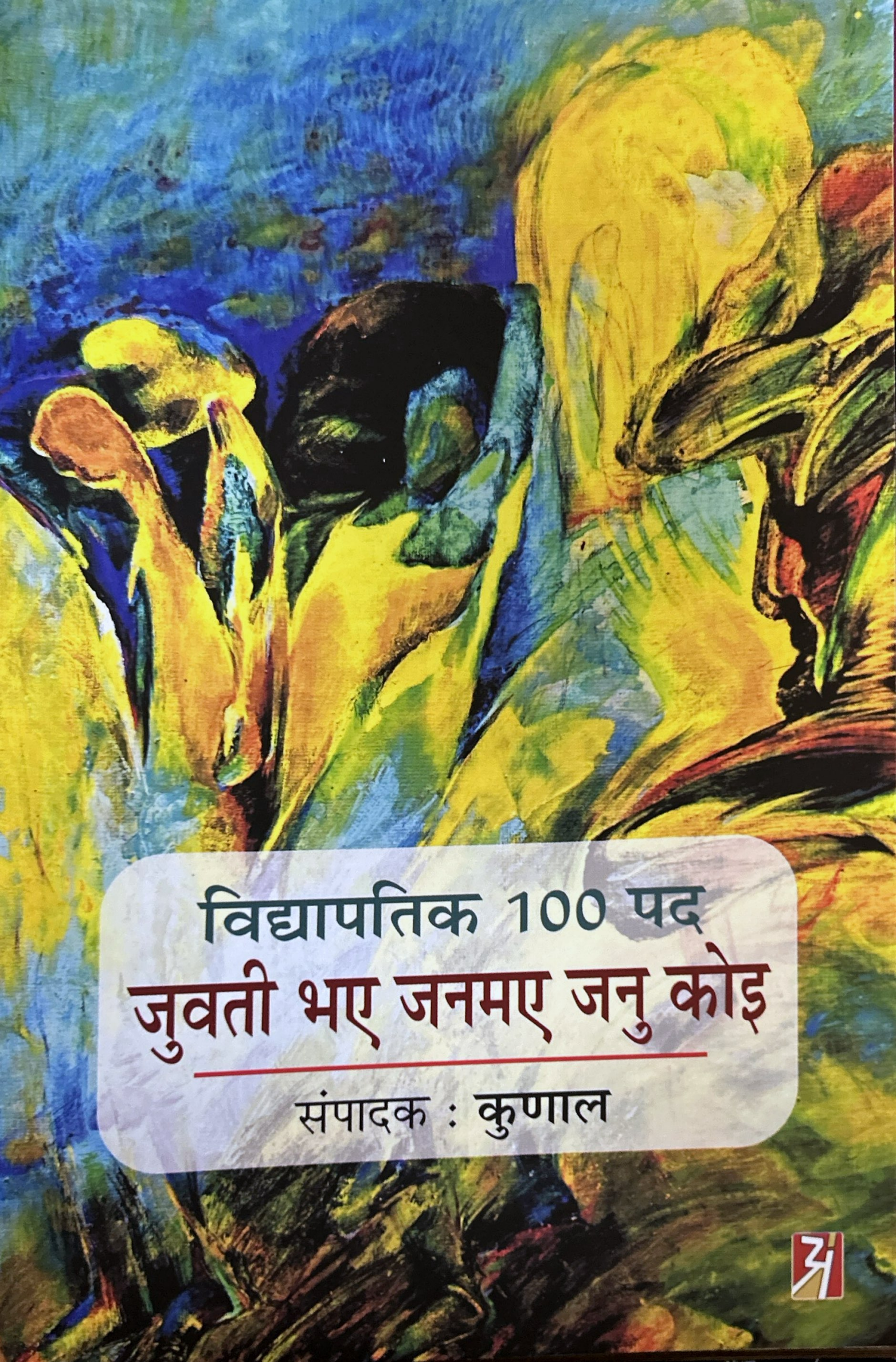

विद्यापतिक 100 पद

जुवती भए जनमए जनु कोइ

संपादक : कुणाल

विद्यापतिक 100 पद

जुवती भए जनमए जनु कोइ

विद्यापतिक 100 पद

जुवती भए जनमए जनु कोइ

संपादक : कुणाल

अंतिका प्रकाशन प्रा. लि.

ISBN 978-81-962063-0-7
विद्यापतिक 100 पद : जुवती भए जनमए जनु कोइ
© कुणाल
पहिल संस्करण (पेपरबैक) : 2023

मूल्य : 250.00 रुपए

प्रकाशक
अंतिका प्रकाशन प्रा. लि.
सी-56/यूजीएफ-IV, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-II
गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.)
फोन : 0-9871856053
ई-मेल : antika56@gmail.com
वेबसाइट : www.antikaprakashan.com

आवरण चित्र : मृदुला श्रीवास्तव

मुद्रक : आर.के. आफसेट प्रोसेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

VIDYAPATIK 100 PAD : JUVATI BHAY JANME JANU KOI
(Collection of Vidyapati's Poems) Edited by Kunal
Published by Antika Prakashan Pvt. Ltd., C-56/UGF-IV, Shalimar Garden Ext.-II
Ghaziabad-201005 (UP) India
Price : ₹ 250.00

जुवती भए जनमए जनु कोइ

विद्यापति तथाकथित देवभाषा संस्कृतक विद्वान रहितहुँ लोकभाषा मे सेहो पर्याप्त काव्य-रचना कयलनि आ अपन सर्वश्रेष्ठ एहि भाषा केँ देलनि, ई बात कखनो बिसरल नइँ जा सकैछ। खासक' संस्कृतक वर्चस्व वाला ओहि समय मे जखन सामान्य जन आ ओकर भाषा लेल अभिजनक भीतर हीन-भावना भरल छल, तखन एहि तरहक प्रयास एक सीमा धरि क्रांतिकारी मानल जा सकैछ। निश्चये विद्यापति केँ लोकभाषा कि जनभाषा मे एहि तरहक लेखन लेल पंडित सामाजक मारते विरोधक सामना करय पड़ल हेतनि। ई फराक बात जे एहि तरहक विरोधक सामना करबाक कोनो साफ ध्वनि हिनक पदावली मे नइँ भेटैत अछि। अवहट्टक मात्र एक टा पद मे एहन सन लोकक लेल कहै छथि—'सुअन पसंलइ कब्ब मझु, दुज्जन बोलइ मंद/अवसओ बिसहर बिस बमइ, अमिय बिमुक्कइ चंद।' विद्यापतिक पदावली केँ अश्लील कहैत ओकरा नापसंद करैवला अभिजन वर्ग जखन हुनका अपनाबै कि हुनक विरासत पर अवैध रूप सँ कब्जा करै लेल आगाँ अबैत अछि, तँ ओ सभ खास तरहक भक्त आ शृंगारिक कवि रूप मे हिनक हदबंदी करैत कविताक महत्त्व केँ घटाय दैत अछि। देश भरि मे विद्यापतिक नाम पर आयोजित होब'वला पर्व समारोह तकर उदाहरण थिक जत' भोज-भात आ फूहड़ फिल्मी धुन पर किछु गीत-नादक कर्मकांड भने कयल जाइत रहल हो, ओत' विद्यापति साहित्य सँ कोनो सार्थक परिचय दर्शक-श्रोता केँ नइँ भेटै छै। एकर विपरीत ओहि समयक लोक-समाज, जाहि मे आजुक दलित-बहुजन प्रमुख अछि, हिनक गीत केँ 'विदापत' रूप मे गबैत-प्रदर्शित करैत आइ धरि ओहिना जीवित रखलक अछि, जेना स्त्रीगण अपन पारंपरिक गायन मे।

कवि विद्यापतिक ई विडंबना थिक जे आइ ओ जाहि अभिजनक कब्जा मे छथि (जकरा लेल ओ संस्कृत मे कर्मकांडक मारते किताब लिखलनि), ओकर कुलीन-कुलवंत हेबाक निरर्थकता-बोधक गीत लिखैत ओहि छद्म पर ओ चोट सेहो करैत देखाइ छथि। कुलीन वर्ग अपन स्त्री लेल मनु महराजक बनाओल शुचिताक जाहि जेहलक देबाल केँ मजगूत करैत रहल, विद्यापतिक कविताक स्त्री 'नव अनुरागिनी राधा' जकाँ कतेको ठाम तकर उल्लंघन करैत नव बाट पर एकसरि चलबाक साहस करैत भेटै अछि। हुनक नचारी मे भक्ति-रस सँ बेसी एक लाचार आदमीक संघर्ष-

गाथा भेटै अछि। जकर झोरी मूस काटि देलक अछि, जकरा घर मे खर्ची नइँ, जे माँगि-चाँगि गुजर करैत अछि, जकर अभावग्रस्त पत्नी एक बच्चा केँ कोरा मे ल' दोसरक हाथ पकड़ने नहिरा भागि रहल छै—तेहन मस्त-मलंग हुनक बौरहवा। जाहि लोकक भाषा मे ओ गीत-कविता लिखलनि, आ जे हुनक गीत केँ विदापत रूप मे दीर्घकाल धरि जिया क' रखलकनि, तकर जीवन-संघर्ष आकि आक्रोश विद्यापतिक काव्य-कानन मे ओहिना नइँ आबि सकल जेना शिवसिंहक राजमहल मे ओहि जन सभक प्रवेश कठिन छल। मुदा ओकरा जीवनक दुख-दर्दक आंशिक चित्र विद्यापतिक नचारी मे सबजन केँ भेटै छै। ओहि समय मे स्त्री-जीवनक पीड़ा केँ ओ एक दिस मीरा जकाँ गहराइ सँ बुझैत 'जुवती भए जनमो जनु कोइ' सन ऊँचाइक गीत लिखैत छथि, तँ दोसर दिस प्रेमगीत। ओत' त्रिशूल तोड़ि हरक फार बनबै आ कृषि-कर्मक महिमा बतबैवला गीत भेटै अछि, तँ जीवनक नाना जंजालक मारते रास स्मरणीय चित्रणवला गीतसभ सेहो अछि। संगीत केँ एहि काव्य-कानन मे खूबे महत्त्व भेटल अछि आ 'बाजत द्रिगि-द्रिगि धो द्रिमि...' सन गीत तकर श्रेष्ठ उदाहरण। आ तहिना प्रेम आ रोमान्स ल'क' एत' बेसी बात आयल छै। ईहो सत्ये जे प्रेम आ रोमान्सक महत्त्व मानव जीवन मे सब दिन रहतै—जेना बुद्धक करुणाक दरकार सब दिन बनल रहतै, तहिना 'पाए विचार'क महत्त्व सब दिन बनल रहतै। हँ, देसज शिव आ अभिनव राधा केँ जहिना महत्त्व भेटलै, तहिना ओत' बुद्ध अनुपस्थित रहलाह। कहबाक आशय ई जे विद्यापति यथास्थिति सँ असन्तुष्ट, अनेक तरहक विवशता आ विरोधाभास मे ओझरायल रहितहुँ, अपना समयक एक बेचैन कवि रहलाह। हुनक ई बेचैनी हमरा सभक धरोहर छी।

एहि पुस्तकक योजनाक पाछाँ कोनो अतिरिक्त भावोच्छ्वास नइँ। ई चयन विशेष रूप सँ नव पीढ़ीक पाठक लेल कयल गेल अछि। खासक' ओहन पाठक लेल जे खुजल दृष्टिए आजुक संदर्भ मे कवि विद्यापति केँ बुझबाक आ ओहि मादे अपन दृष्टि विकसित करबाक आकांक्षी हो, मुदा ओहि समयक बहुत रास अप्रचलित शब्द आ अनेक संदर्भ सँ अपरिचयक कारणें कविताक मर्म धरि नइँ पहुँचि पाबि रहल हो। तें हम विद्यापति-काव्यक मर्मज्ञ विद्वान कवि-रंगकर्मी कुणाल जी सँ विशेष रूपें कविता-चयनक आग्रह कयल। हुनका सँ हमर आग्रह छल जे आजुक समय मे प्रासंगिक विद्यापतिक एक सय श्रेष्ठ कविताक चयन (सही पाठ रूप मे)क संगहि ओ ओकर अप्रचलित/कठिन शब्दक अर्थ आ संक्षिप्त पाठ-अर्थ सेहो राखथि। कुणाल जी बहुत रुचि ल'क' ई श्रम-साध्य काज सम्पन्न कयलनि। एहि लेल हुनका प्रति अंतिका परिवार विशेष रूपें आभारी अछि।

—गौरीनाथ

अनुक्रम

जुवती भए जनमए जनु कोइ/**गौरीनाथ** V

स्त्री-मोन

तोहर वचन अमिञ ऐसन 9
कत न जीवन संकट परए 11
मञे सुधि पुरुब पेम भरे भोरि 12
आसाञे मन्दिर बसि निसि गमाबए 14
आदरे अधिक काज नहि बन्ध 16
पुरुब जत अपुरुब भेला 17
जनम होअए जनु जञो पुनु होइ 18
दुरजन वचन लहए सब ठाम 19
हमे जुवती पति गेलाह विदेश 20
मालति-मधु मधुकर कर पान 21
जौवन रतन अछल दिन चारि 22
सरोवर-घाट-निकट कण्टक तरु, हेरहि न पारल आगू 23
हमे एकसरि पिअतम नहि गाम 24
जौवन चाहि रूप नहि ऊन 25
गुञ्ज आनि मुकुता हमे गाँथल 27
जाहि देस पिक मधुकर नहि गुजर 28
थिर पद परिहरिए जे जन 29
पिआ परवास आस तुअ पासहिं 30
कुल गुन गौरव सील सोभाओ 32
निधन काँ जञो धन किछु हो, करए चाह उछाह 34
गगन मण्डल उग कलानिधि, कते नेबारब दीठि 35
मधु सम वचन कुलिस सम मानस 36
मोराहि रे अंगना चांदन केरि गछिआ 38
जनम कृतारथ सुपुरुष संग 39
अहे सखि! अहे सखि लए जनु जाह 40
झञ्झ घन गरजन्ति संतति 41

अंकुर तपन तापें जदि जारब 42
सखि हे! कि पुछसि अनुभव... 43
ए हरि, ए हरि, सुनिअ... 44
बरिस सघन घन पेमे पुरल मन 45
सखि हे! बलँभ जितब विदेसे 46
माधव हमर रटल दुर देस 47
के पतिआ लए जाएत रे 48
मोर पिअतम सखि गेल... 49
सासु जरातुरि भेली 51
माधव बुझल तुअ गुन आजे 52
आबह संग सहलोलिनि रे 54
अनुखन माधव माधव सुमरिते 55
फुल एक बाड़ी लाओल मुरारि 56
आंगने आओव जब रसिआ 57
बारिस निसा मोञे चलि... 58
प्रथम समागम के नहि जान 59
सपने आएल सखि मझु पिआ... 60
सुतलि छलहुँ हम घरबा रे 61
कुञ्ज भवन सञो निकसलि हे 62
अरुन किरन किछु अम्बर देल 63
पावक शिखा निच न धाबए 64
आरति आपु परार नहि चिन्हह 65
माधव ई नहि उचित विचारे 66
माधव! जानल न जीउति राही 67
आएल उनमद समय वसंत... 68
तोहर हृदय कुलिस कठिन 69
बड़ि बड़ाइ सबे नहि पाबए 70
माधव! तोहें जनु जाह विदेसे 72
दखिन पवन बह मन्द 73
सरसिज विनु सर 74
हम नहि आजु रहब एहि आंगन 76
अमा कि न गमाउति गोरी 78
गौरा तोर अंगना 80
आगे माइ जोगिआ हमर... 81
आजु नाथ एक बरत महासुख... 82
बुढ़हु वयस हर बेसन न छड़ले 84
बेरि बेरि अरे सिव... 85
गुरुजन दुरजन परिजन बारि 86
प्रेमक गुन कहइ सब कोइ 87
मोर बउरा देखल केहु कतहु... 88
जलधि न मागए रतन भंडार 89
कालि कहल पिआञे साँझहि रे 90
कउड़ी पठओले पाब नहि घोर 91
चान्द सुधा सम वचन विलास 92

कवि-मोन

खेत कएल रखबारे लूटल... 93
कुसुमे रचित सेज मलयज... 94
दिवस मन्द भल न रहए सब... 96
आज अकामिक आएल... 97
कतन झोरी सिन्दुरें... 98
सूखल सर सरसिज भेल... 99
बिरला के भल खिरहर... 100
विदिता देवी विदिता हो 102
नव अनुरागिनि राधा 103
नव वृन्दावन नव नव तरुगन 104
बाजत द्रिगि-द्रिगि धो-द्रिमि... 105
कुसुमित कानन-कुञ्ज बसि 106
बड़ जन करए पिरीति रे 107
जाड़ल बाम्भन तेज सनान 108
चरित चातर चित्ते बेआकुल... 110
सपन देखल हम सिबसिंह भूप 111
दुल्लहि तोहर कतए छथि माए 112
दूर दुग्गम दमसि गञ्जेओ 113
कि कहब हे सखि पामर बोल 115
अरे अरे! भमरा!... 116
प्रण्यी मनमथ करहि... 117
सुन्दरि! जञो तोहें... 118
विगलित चिकुर मिलित मुख... 119
थिर नहि जउबन थिर नहि... 120
जञो दिठिअओलह ई मति... 121
आइ तँ सुनिअ उमा भलि... 122
रुसि चललि गउरी... 123
नित मोञे जाञो भिखि... 124
चान्द सार लए मुख घटना... 126
ससन परसें खसु... 127

स्त्री-मोन

[1]

तोहर वचन अमिञ ऐसन
ते मति भूललि मोरि
कतए देखल भल मन्द होअ
साधु न फाबए चोरि।

साजनि आबे की बोलब आओ
आगु गुनि जे काज न करए
पाछे हो पचताओ।

अपन हानि जे कुल के लाघव
किछु न गुनल तबे
मन मनोरथ बानिहि लागल
आ ओर गमाओल सबे।

जतने कतन के न बेसाहए
गुँजा केदहु कीन
परक वचने कुञ धस देअ
तैसन के मतिहीन।

भमर भमर सबे केओ बोलए
मञे धनि जानल मोर
पढ़ि-गुनि हमे सबे बिसरल
दोस नहि किछु तोर।

भने विद्यापति सुन तोञे जुवति
हृदय न कर मंद
राजा रूपनरायन नागर
जनि उगल नव चंद।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-51)

शब्दार्थ : *अमिञ—अमृत, फाबए—सोभए, गुनि—सोचि, लाघव—हीनता, बानिहि—आगि, ओर—अंत, कुञ—इनार, मञे—हम।*

पाठ-अर्थ : अमृत सन तोहर वचन सुनि हम भ्रम मे पड़लहुँ। कहू तँ नीक लोकक एहन चालि! साधु भ'क' चोरि!
सखि! आब हम की बाजी? जे सोचिक' काज नइँ करैए तकरा तँ एहिना पाछू पश्चाताप कर' पड़ै छै!
हम कुलक हीनताक नइँ सोचल, तँ मनोरथ मे आगि लागल आ अंत दुखदायी भेल।
लोक कोनो चीज बेस जानि-बुझिक' कीनैए। अनका कहला पर जे इनार मे धँसैए तकरा सन मतिहीन आर के?
भमरा तँ भ्रमणशील होइए। तकरा हम केना अपन मानि लेलहुँ। सब किछु जनैत-बुझैत हम, सब टा बिसरल। तँ तोहर कोन दोख (दोष)?

[2]

कत न जीवन संकट परए
कत न मीलए नीधि
उत्तिम तइअओ सत न छाड़ए
भल मन्द कर बीधि।

साजनि गए बुझाबह कान्हू
उचित बोलइते ने होअ से होअ
दैन भाखह जनू।

जैसनि सम्पति तैसनि आसति
पुरुब अइसन छला
मान बेचि यदि प्राण जे राखिअ
ता ते मरण भला।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., परिशिष्ट-ख, प.सं.-5)

शब्दार्थ : *नीधि—संपत्ति, उत्तिम—नीक लोक, सत—सत्य, बीधि—विधाता, दैन—दीनता, आसति—आसक्ति, संपति—गुण, योग्यता।*

पाठ-अर्थ : जीवन पर कतबो संकट किअए ने आबओ, बदला मे कतबो संपत्ति किअए ने भेटओ, उत्तम व्यक्ति तैयो उचित बातक त्याग नइँ करैए। नीक-बेजाए तँ विधाताक हाथ मे छनि!
जाक' हुनका (कान्ह केँ) बुझाउ। उचित बजबाके चाही, खाहे जे हेबाक हो से होउ!
सखि! जकर जेहन गुण-योग्यता होइ छै, तकर आसक्ति सेहो तेहने भ' जाइ छै! मान गमा क' प्राण-रखनाइ सँ नीक जे मरिए जाइ।

[3]

मञे सुधि पुरुब पेम भरे भोरि
भान अछल पिआ आइति मोरी।

जाए खने पुछलन्हि भलेओ न मन्दा
मन बसि मनहि बढ़ओलन्हि दन्दा।

ए सखि! सामि अकामिक गेला
जिवहु अराधिन अपन न भेला।

सुपुरुष जानि कैलि तुअ सेरी
पाओल पराभव अनुभवि बेरी।

तिला एक लागि रहल अछ जीवे
जनि अन्धार बरइ घर दीवे।

सुख जनमातर सुरत सपना
सुन भले नीन्द गुन दरसि अपना।

ताहि सुपुरुष के कि बोलिबो आइ
अनुसए पाओल वचन बड़ाइ।

वचन रभस नहि मुख नहि हासे
भागे ने विचए भञ विलासे।

हृदय न डरे रति हेतु जनाइ
कञोने परि सेओब निठुर कन्हाइ।

चान्दबदनि धनि न झाँखह आने
तुअ गुन सुमरि आओब पुनु कान्हे।

भनइ विद्यापति एहु रस जाने
राए सिवसिंह लखिमा देवि रमाने।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-8)

शब्दार्थ : *मजे—हम, सुधि—छल-प्रपंचहीन, पुरुब—पहिनेक, पेम—प्रेम, भोरि—सोझमतिया, भान—विश्वास, आइति—अधीन, खने—क्षण मे, अकामिक—एकाएक, दन्दा—द्वंद्व/झंझट, अराधिन—आराधना, सेरी—आश्रय, अनुभवि—बेर पर, दीवे—दीप, बरइ—बरैत/जरैत, अनुसए—पश्चाताप, रति—अनुराग, रभस—प्रेम, झाँखह—दुखी भेनाइ।*

पाठ-अर्थ : छल-प्रपंचहीन हम, पहिलुक प्रेमक आधार पर विश्वास केलौं जे पिआ हमरा अधीन छथि।

जाए काल नीक-बेजाए किछु नइँ पुछलनि। हमरा मोन मे बैसि क' मोनक द्वंद्व बढ़ा देलनि।

हे सखि, जीवन भरिक आराधना सँ ओ हमर नइँ भेला आ एकाएक चलि गेला। सुपुरुष जानि क' जिनक आश्रय लेल मुदा वास्तविकता मे पराभव टा भेटल। आब हमरा देह मे तिल मात्र जीवन बाँचल अछि जेना अन्हार घर मे दीप जरैए। जन्म-जन्मान्तरक लेल रतिक्रिया सपना भ' गेल आ निन्न तँ जेना शून्य मे बिला गेल।

जिनकर बड़ाइ करैत रही से पश्चातापक कारण बनल छथि, ओहि सुपुरुष केँ की कहू?

वचन मे रस तक नइँ, मुँह पर हँसी नइँ, भाग्य मे भ्रू-विलासक अंश नइँ, तखन हृदय मे अनुराग कत' सँ आओत? ई बात हम निष्ठुर कान्ह केँ केना क' बुझाउ?

[4]

आसाञे मन्दिर बसि निसि गमाबए
सुखें न सूत सञान।
जखने जतने जाहि निहारए
ताहि ताहि तुअ भान॥

मालति! सफल जीवन तोर
तोरे विरहें भुअन भमए
भेल मधुकर भोर॥

जातिक केतकि कत न अछए
कुसुम रस समान।
सपनेहु नहि काहु निहारए
मधु कि करत पान॥

वन उपवन कुञ्ज कुटीरहिं
सबहि तोहि निरूप।
तोहि बिनु पुनु पुनु मुरुछए
अइसन पेम सरूप॥

साहर-निवह सउरभ न सह
गुञ्जरि गीत न गाब।
चेतन बापुर चिन्ताञे आकुल
हरखें सबे सोहाब॥

जकर हृदय जतहि रतल
धसि पए ततहि जाए।
जइअओ जतने बान्धि निरोधिअ
निमन नीर समाए॥

ई रस राए सिवसिंह जानए
कवि विद्यापति भान।
रानि लखिमा देवि-वल्लभ
सकल गुन निधान॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-18)

शब्दार्थ : *आसाजे—आशा, निसि—राति, सजान—ज्ञानवान, मुरुछए—मुर्च्छित होए, पेम—प्रेम, भुअन—भुवन/संसार, निरूप—खोज, साहर-निबह—नव आम, सउरभ—सौरभ, गुंजरि—गुंजायमान, चेतन—प्राण, पापु—पापी, सोहाब—नीक लगनाइ, भोर—मुग्ध, रतल—रमल/रहल, निरोधिअ—रोकू, निमन—नीचाँ दिस, नीर—पानि, समाए—बहए।*

पाठ-अर्थ : ज्ञानी लोक आश केर अनुभव मे समय कटैए। जकरा सँ प्रेम करैए से ओकरा सब ठाम देखा पड़ै छै! हे मालति! तोहर जीवन सफल छह जे भमरा तोरा लेल मुग्ध भेल सौंसे संसार घुमैए!

वन-उपवन, कुंज-कुटीर मे कतेक ने जातिक, कतेक कि सब अछि आ सब समान रूप सँ रसमयी अछि तैयो मधुकर तकरा दिस सपनो मे दृष्टि नइँ करैए, तँ मधुपान की करत? सबठाम तोहर देखबाक इच्छा रखैए आ नइँ पाबि मूर्च्छित होइए। प्रेम हो तँ एहन!

तोरा लेल व्याकुल भमरा आमक सौरभ केँ नइँ अनुभव करैए आ ने ओकरा लेल गुनगुनाइए। ओकर पापी प्राण तँ तोरा चिन्ता मे मग्न छै आ ई सब बात तँ हर्षक स्थिति टा मे सोहाइ छै!

जकर हृदय जेम्हर रमल रहै छै से तेम्हरे चलि दैए। जेना कतबो बान्ह बान्हल जाए, पानि नीचे मुँहें बहैए!

[5]

आदरे अधिक काज नहि बन्ध
माधव बुझल तोहर अनुबन्ध।

आसा राखह नञन पठाए
कत खन कउसलें कपट नुकाए।

चल चल माधव तोहें जे सञान
ता के बोलिअ जे उचित न जान।

कसिअ कसउटी चिन्हिअ हेम
प्रकृति परेखिअ सुपुरुख पेम।

सउरभें जानिअ कुसुम पराग
नञने निवेदिअ नव अनुराग।

भनइ विद्यापति नञनक लाज
आदरे जानिअ आगिल काज।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-110)

शब्दार्थ : *आदरे—खुशामद, नयन—आँखि, कउसलें—चालाकी, अनुबन्ध—अभिप्राय/मतलब/स्वार्थ, बन्ध—सिद्धि, हेम—सोना*

पाठ-अर्थ : अधिक खुशामद सँ कार्य-सिद्धि नइँ होइ छै, से हम अहाँक स्वार्थ बुझि रहल छी। अहाँ आँखि सँ जे इशारा क' रहल छी से स्पष्ट अछि। कतबो चालाकी करू, कपट प्रगट भइए जाइ छै।
अहाँ तँ ज्ञानी छी। अहाँ केँ की कहू? कहल तँ ओकरा जाए, जे उचित-अनुचित नइँ जनैए!
सोनाक शुद्धता कसौटी पर परखल जाइए। तहिना सुपुरुषक प्रेम ओकर प्रकृति सँ चिन्हाइ छै!
सुगन्धि सँ पुष्प-परागक ज्ञान होइ छै। तहिना आँखिक पानि नव अनुरागक ज्ञान करबैए!
विद्यापति कहै छथि जे आँखिक लाज राखल जाए आ खुशामद सँ बुझू जे आगाँक कोन काज छै।

[6]

पुरुब जत अपुरुब भेला
समय बसे सेहञो दूर गेला।

काहि निवेदञो कुगत पहू
परमहो परबतओ लहु।

तोहुंहुं मानवित्त अभिमानी
परजना ओ बड़ भय हानी।

हृदय वेदन राखिअ गोए
जे किछु करिअ भुंजिअ सोए।

सबहि साजनि धैरज सार
नीरसि कह कवि कण्ठहार।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-30)

शब्दार्थ : *पुरुब—पूर्व/पहिलुक, अपुरुब—अपूर्व, सेहञो—ओहो, कुगत—कुमार्ग, परम—श्रेष्ठ, परबतओ—पहाड़ सन, लहु—लघु, हीन—नीच, गोए—नुकाक', भुजिए—भोगू, नीरसि—छोड़िक।*

पाठ-अर्थ : पूर्वक जे किछु अपूर्व छल से नहि रहल। समयक दबाव मे दुरि भ' गेल!
ककरा कहू जे हमर प्रिय कुमार्गी भ' गेलाहए। कहू तँ पर्वत सन महान व्यक्ति कतहु एहन नीच भ' जाए?
मान-धनक अभिमानी लेल पर-पुरुष संग हानिक कारण होएत। से हृदयक वेदना केँ नुका क' राखल जाए। किएक तँ अपन करम-फल अपने भोग' पड़ै छै!
तें कवि कण्ठहार कहै छथि जे सब किछु छोड़ि, धैरज धारण कर'क चाही!

[7]

जनम होअए जनु जञो पुनु होइ।
जुवती भए जनमए जनु कोइ॥

होइह जुवति जनु हो रसमन्ति।
रसओ बुझए जनु हो कुलमन्ति॥

निधन मागञो बिहि एक पए तोहि।
थिरता दिहह अवसानहु मोहि॥

मिलिह सामि नागर रसधार।
परबस जनु होअ हमर पिआर॥

होइह परबस बुझिह विचारि।
पाए विचार हार कञोन नारि॥

भनइ विद्यापति अछ परकार।
दन्द समुद होएत जीव दए पार॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-54)

शब्दार्थ : *जनु—नहि, पए—वरदान, कृपा, बिहि—विधाता, परकार—उपाय, समुद—सागर, दन्द—द्वन्द्व*

पाठ-अर्थ : ओना जन्म नइँ हो तँ नीक मुदा हेबे करए तँ जुवती (स्त्री) रूप मे जन्म नइँ हो! फेर जँ जुवती-जन्म हो तँ ओकरा रसज्ञ नइँ हेबाक चाही। जँ रसज्ञो भेल तँ ओकरा कुलीन नहिए टा हेबाक चाही!
ईश्वर सँ प्रार्थना जे ओ एहन वरदान देथि जे कठिन सँ कठिन समय मे हमर मोन स्थिर रहए। एहन पति भेटए जे ज्ञानी-रसज्ञ तँ हो मुदा ओ पराधीन नहि हो। परवशता जँ अनिवार्य हो तँ हमर स्वामी विचारवान हो, किएक तँ विचारवान पतिक स्त्रीक पराजय नइँ होइ छै!
विद्यापति कहै छथि जे प्राण दैए क' जीवन द्वन्द्व-समुद्रक पार कएल जा सकैए।

[8]

दुरजन वचन लहए सब ठाम
बुझल न रहए जाबे परिनाम।

ततहि दूर जा जतहि विचार
दीप देलें घर नहि रह अन्धार।

हमर विनति सखि कहब मुरारि
सुपहु रोष कर दोष विचारि।

से नागरि तोहें गुनक निधान
अलपहि माने बहुत अभिमान।

ककें बिसरलि हे पुरुब परिपाटि
लतड़लि लतिका की फल काटि।

भनइ विद्यापति एहु रस जान
राए सिवसिंह लखिमा देइ रमान।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-70)

शब्दार्थ : *लहए—फबए, सुपहु—सज्जन पति, अलपहि—कम्मे, ककें—किए*

पाठ-अर्थ : जाबत परिनाम नइँ ज्ञात हो ताबते दुर्जनक बात लहै छै। ई ओतबे काल तक टिकैए जाबत विचारक प्रवेश नइँ हो, जेना दीप बारने अन्हार घर मे इजोत होइ छै!
सखि, मुरारी केँ मीठ बोल मे बुझेबनि जे सज्जन पुरुषक प्रिया गुणवन्ती होइ छथि, अहाँ विचारवान पुरुष छी तथा नीक लोक केँ दोष पर विचार कैए क' रोष कर'क चाही!
प्रिय किएक पूर्वक बात सब बिसरला? लतड़ल लता केँ काटने कोन लाभ?

[9]

हमे जुवती पति गेलाह विदेस
लग नहि बसए पलउसिहु लेस।

सासु ननन्द किछुअओ नहि जान
आँखि रतौंधी सुनए न कान।

जागह पथिक जाह जनु भोर
राति अन्धार गाम बड़ चोर।

सपनेहु भाओर न दे कोटवार
पओलहु नौते न करए विचार।

नृप इथि काहु करए नहि साति
पुरुष महते रह सरब सजाति।

विद्यापति कवि एह रस गाब
उकुतिहि अबला भाव जनाब।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-82)

शब्दार्थ : *भाओर—गश्ती, कोटवार—कोतवाल, नौते—बजओला पर, इथि—अतएव, साति—शक्ति/सजा, महते—महान, सरब—सब, पलउसिहु—पड़ोसिया, ननन्द—ननदि*

पाठ-अर्थ : हम युवती छी आ हमर पति परदेश गेल छथि। लग-पास मे कोनो पड़ोसी नहि। सासु-ननदि किछु जनबाक स्थिति मे नहि छथि। हुनका आँखि मे रतौंधी छनि आ कान सँ सेहो नइँ सुनै छथि। हे पथिक, जागि क' रहह। राति अन्हार छै आ गाम चोर सँ भरल छै। एत' कोतवाल गश्त नइँ दैए। शिकायत केला पर, बजओला पर सेहो नइँ अबैए। एतुका जे राजा छथि से ककरो सजाए नइँ दै छथिन आर सामन्त आ पैघ लोक सब एक्के जातिक छथि।
विद्यापति एहि उक्ति सँ अबलाक मनोभाव जनबै छथि।

[10]

मालति-मधु मधुकर कर पान
सुपुरुष जओ हो गुनक निधान।

अबुझ न बुझए भलाहुँ बोल मन्द
भेम न पिबए कुसुम-मकरन्द।

ए सखि, कि कहब अपनुक रंग
सपनेहुँ जनु हो कुपुरुष संग।

दुधे पटाइअ सीचिअ नीत
सहज न तेज करइला तीत।

कते जतने उपजाइअ गून
कहल न बुझए हृदयक सून।

मन्दा रतन भेद नहि जान
बान्दर मूँह न सोभए पान।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-111)

शब्दार्थ : *भेम—भेम्ह, मकरन्द—पराग, नीत—प्रतिदिन।*

पाठ-अर्थ : मालती-परागक पान मधुकर क' सकैए तें ओकर तुलना गुणनिधान सुपुरुष सँ अछि। जकरा ज्ञान नइँ से नीक केँ अधलाह कहैए, जेना भेम्ह फूलक रसक आनन्द नइँ लँ सकैए। हमर इच्छा अछि जे जागल मे की, सपनहु मे एहन कुपुरुष सँ मिलन नहि हो! प्रतिदिन जँ दुध पटाएब तैयो करैला तीत के तीते रहत। तहिना शून्य हृदय बला लोक केँ कतबो प्रयास केला सँ गुणक उत्पति संभव नइँ! मंदबुद्धि लोक की जानए रतनक मोल, जेना बानरक मुँह मे पान!

[11]

जौवन रतन अछल दिन चारि
से देखि आदर कएल मुरारि।

आबे भेल झाल कुसुम रस छूछ
वारि बिहुन सर केओ नहि पूछ।

हमरिओ विनति कहब सखि गोए
सुपुरुष नेह अन्त नहि होए।

जाबे रहए धन अपना हाथ
ताबे से आदर कर संग साथ।

धनिकक आदर सबतहु होए
निरधन बापुर पुछ नहि कोए।

भनइ विद्यापति राखब सील
जओ जग जिबिअ नबउ निधि मील।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-133)

शब्दार्थ : *अछल—छल, आदर—सम्मान/प्रेम, झाल—झड़ल, छूछ—खाली, वारि—पानि, बिहुन—बिना, सर—तालाब, गोए—गुप्त, बापुर—बेचारा, सील—शील/मर्यादा, नबउ—नबो, निधि—संपत्ति।*

पाठ-अर्थ : यौवन रूपी रत्न चारि दिनक लेल छल जकरा देखि क' मुरारी प्रेम केलनि।
आब फूल सुखा गेलए, रस-विहीन भ' गेलए। आब एकर कोनो मोल नइँ जेना पानि सुखा गेला पर पोखरि केँ केओ नइँ पुछैए!
हमर विनती आस्ते सँ सुनेबनि आ कहबनि जे सुपुरुषक वचन निष्फल नइँ हेबाक चाही।
जाबत तक अपना संग धन रहै छै ताबे तक लोक ओकर आदर-सम्मान करै छै! धनिक लोकक सम्मान सब ठाम होइ छै। बेचारा निर्धन केँ पुछनिहार केओ नइँ।
विद्यापति कहै छथि जे किछु रहओ वा नइँ, शील-मर्यादा-विवेक हरदम संग राखब आ जीवन रहत तँ नवो निधि भेटत।

[12]

सरोवर-घाट-निकट कण्टक तरु, हेरहि न पारल आगू।
सांकड़ि बाट उबटि चलि भेलिहुँ, तञे कुच कण्टक लागू॥

ननदी! सरुप निरूपह दोषे।
बिनु विचारें बेभिचार बुझओबह, सासु करओबह रोषे॥

कउतुकें कमलनाल हमे तोलल, करए चाहल अवतंसे।
रोषे कोष सञो मधुकर धाओल, तेहि अधर करु दंसे॥

गरुअ कुम्भ सिर थिर नहि थाकए, तञे उधसल केसपासे।
आतप दोषें रोषें चलि अइलिहुँ, खरतर भेल निसासे॥

पथ अपवाद पिसुने परचारल, तथिहु उतर हमे देला।
अमरख चाहि धइरज नहि रहले, तञे गदगद सर भेला॥

भनइ विद्यापति सुन वर जउवति, ई सबे राखह गोई।
ननदी सञो रस रीति बढ़ओब गुपुत बेकत नहि होई॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-137)

शब्दार्थ : *सांकड़ि—संकीर्ण, उबटि—टेढ़ भ'क', सरुप—सत्य, कउतुकें—उत्सुकतावश, कुच—स्तन, कंटक—कांट, तोलल—तोड़ल, अवतंसे—आभूषण, गरुअ—भारी, कुम्भ—घैल, थाकए—रहए, आतप—ऊष्मा/रौद, रोषें—तीव्रता/तेज गति, खरतर—तेज, पिसुने—चुगलखोर, तथिहु—ओतहु, अमरख—आमर्ष, सर—स्वर/आवाज, गोई—गुप्त, गुपुत—गुप्त, बेकत—व्यक्त।*

पाठ-अर्थ : सरोवरक निकट नइँ देखल जे काँटक गाछ छै, से संकीर्ण बाट पर टेढ़ भ'क' चलने देह मे काँट बेधा गेल। हे ननदि! बिना सत्य-असत्यक विचार केने व्यभिचारक आरोप लगा क' सासु सँ गंजन जुनि कराबह!
उत्सुकतावश, आभूषण बनेबाक लेल कमल-नाल केँ तोड़ल तँ कमल-कोष मे बैसल भौंरा तमसा क' ठोर पर डंसि लेलक। भारी घैल माथ पर स्थिर नइँ रहै छल से केश छिड़िया गेल। रौद दुआरे जल्दी-जल्दी चललहुँ तें साँस तेज भ' गेल।
चुगिला सब झूठक अपवाद लगौलक। हम तकर उत्तरो देल। आमर्ष मे धैर्य चूकल तें हमर स्वर भारी भ' गेल।
विद्यापति कहै छथि जे हे श्रेष्ठ युवति, ननदि संगे रस-रिति बढ़ा क' राखह। तखन तोहर गुप्त बात सब कखनो सार्वजनिक नइँ हेतह।

[13]

हमे एकसरि पिअतम नहि गाम
तञे मोहि तरतम देइते ठाम।

अनतहु कतहु देअइतहुँ वास
जञो केओ दोसरि पलउसिनि पास।

चल चल पथुक! चलह पथ माह
वास नगर भमि अनतहु चाह।

आंतर-पांतर सांझक बेरि
परदेस बसिअ अनागत हेरि।

घोर पयोघर जामिनि भेद
जे करबह ता कर परिछेद

भनइ विद्यापति नागरि-रीति
ब्याज वचने उपजाब पिरीति।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-168)

शब्दार्थ : *तञे—तें, तरतम—तारतम्थ/दुविधा, भमि—घुमि, आंतर-पांतर—अंतर-प्रांतर, अनागत—भविष्य, पयोघर—मेघ, जामिनि—राति, परिछेद—पसंद, ब्याज—बहाना/वक्रोक्ति।*

पाठ-अर्थ : हम एसगरुआ छी। पति गाम मे नइँ छथि। तें अहाँ केँ स्थान देब' मे हमरा दुविधा भ' रहलए। आनो ठाम कतहु जोगार धरा दितहुँ से कोनो पड़ोसिनो तँ नइँ छथि।
हे पथिक! जाह नगर मे घुमि क' ठेकान ताकि लैह। साँझक समय छै। बीच मे अंतर-प्रांतर छै। परदेस मे छह से सोचिए-बुझि क' रहबाक चाही।
मेघ सेहो भयाओन छै। रातुक बात छै। से जे करबह तकर निर्णय करह।
विद्यापति कहै छथि जे ई नागरि-रीति भेल, वक्रोक्ति सँ प्रीति उत्पन्न केनाइ।

[14]

जौवन चाहि रूप नहि ऊन
धनि तुअ विषय देषिअ सब गून।

एके पए भेल विधाता भोर
सम कए सामि न सिरजल तोर।

कि कहब सुन्दरि कहइते लाज
से कहले पुनु तोह हो काज।

मन्दाहु काज उकुति भलि भेलि
ते मञे किछु अनुमति तोहि देलि।

जञो तोहे बोलह करञो इथि अंग
चोरी पेम चारि गुण रंग।

दुर कर अगे सखि अइसनि बानि
अमिञ खोअउबिसि सांकरे सानि।

छैलक उकुति कहैते नहि ओर
अरथक गरुअ-वचन के थोर।

जीवन-सार जौवन जग रंग
जौवन तञो जञो सुपुरुख संग।

सुपुरुष पेम कबहु नहि छाड़
दिने-दिने चांद कला जञो बाढ़।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-214)

शब्दार्थ : *चाहि—अपेक्षा, ऊन—छोट, तुअ—तोहर, भोर—मूढ़, उकुति—उक्ति, अंग—अंगीकार/स्वीकार, सम—समान, सामि—स्वामी, तोह—तोहर, इथि—एकरा, सांकरे—शक्कर, गरुअ—गुरुत्वपूर्ण, जग-रंग—संसारक शोभा, छैल—प्रिय।*

पाठ-अर्थ : यौवन आ रूप मे सँ कोनो टा छोट नइँ। तोरा मे तँ सब गुण देखै छी। खाली एक टा मे विधाता भसिआ गेलाह जे ओ तोहर अनुरूप स्वामी नइँ बनओलथुन।

ओना तँ कह' मे लाज होइए, मुदा ताहि सँ तोहर काज बनतह ?

एहि मन्द काजक बात तों भले करै छह! तें ने तोरा हम किछु कहबाक अनुमति देने छी ? जँ बुझह तँ तों एकरा अंगीकार करह जे चोरिक प्रेम मे चारि गुना बेसी आनन्द छै।

हे सखी! एहन अज्ञानी बात सँ तों विरत भ' जाह तँ हम तोरा अमृत मे शक्कर सानि क' खोएबह। हमर प्रियतमक बात कतबो कहू नइँ निंघटैए। ओ कम बजै छथि मुदा हुनकर बातक अर्थ गंभीर होइ छनि। यौवन जँ जीवनक सार, तँ यौवनक सार्थकता सुपुरुष संग मात्र अछि।

सुपुरुष कखनो प्रेमक त्याग नइँ करैए। ओकर प्रेम चान-कला जकाँ वर्द्धमान होइ छै।

[15]

गुञ्ज आनि मुकुता ताहें गाँथल
बूझलि तुअ परिपाटी।
कञ्चन ताहि अधिक कए कहलह
काचहु तह भेल घाटी॥

दूती, अइसन तोहर बेबहारे।
नगर सगर भमि जोहल नागर
भेटल निछछ गमारे॥

सुपुरुष बोलि सिनेह बढ़ाओल
दिने दिने होइति बड़ाई।
तेली बलद थान भल देखिअ
पालव नहि उजिआई॥

सब गुन आगर सबतहु सूनिअ
तञे मोञे लाओल नेहे।
फल कारने तरुअर अवलम्बल
छाहरि भेल सन्देहे॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-223)

शब्दार्थ : *गुञ्ज—घोंघी, बलद—बरद, मुक्ता—मोती, भमि—घुमि, थस—बथान, उजिआइ—सकनाइ, पालव—जुआ*

पाठ-अर्थ : मोती संगे घोंघा गँथवा देलह। तोहर आचरण हम बुझि गेलहुँ। जकरा तों सोना सँ अधिके क'क कहलह से तँ काँचो सँ घटिया सिद्ध भेल। तों एना किए केलह? नगर भरि घुमिक' हमरा लेल ई गमार जोहि अनलह।
तोरा मुँह सँ बड़ाइ सुनि हम सुपुरुष जानि ओकरा सँ नेह बढ़ाओल, मुदा ओ तँ तेलीक बरद जकाँ अपन बथाने धरि ठीक अछि! ओ आर कोनो काज लेल उपयुक्त कहाँ?
सबगुण-आगर छथि से सुनि-सुनि नेह फलक आस मे तरुवरक अवलम्बन कयल, मुदा एत' तँ छाहरि भेटै पर्यंत मे संदेह अछि।

[16]

जाहि देस पिक मधुकर नहि गुजर
कुसुमित नहि कानने
छव ऋतु मास भेद नहि जानए
सहजहि अबल मदने।

सखि हे से देस पिअ गेल मोरा
रसमति बानी जतए न जानिञ
सुनिअ पेम बड़ थोरा।

कहलिओ कहिनी जतए न बूझए
की करति अंगित काजे
कञोन परि ततए रतल अछ बालमु
निभय निगुण समाजे।

हमे अपना के धिक कए मानल
कि कहब तन्हिकि बड़ाइ
कि हमे गरुबि गमारि सबतह
कि रति विरत कन्हाइ।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-262)

शब्दार्थ : *पिक—कोकिला, मधुकर—भमरा, गुजर—गुंजन केनाइ, रतल—रमल, अंगित—इशारा, बानी—बोली, कहिनी—बात, गरुबि—गउरबाहि, विरत—उदासीन।*

पाठ-अर्थ : जहि देस मे कोकिला नहि गाबए, भमरा नहि गुनगुनाए, वन मे फूल नहि फुलाए, लोक ऋतु आ मास-भेद नहि जानए, ओत' तँ प्रेमक कामना निर्बल हेबे करतै।

सखि हे, प्रियतम एहने देस चलि गेलाहए जत' रसक बात केओ नइँ जानए आ जत' प्रेम बड़ थोड़ होइ। साफ कहल बात जत' बूझबे नइँ करए ओत' संकेतक भाषा लोक की बूझत? एहन निर्गुण समाज मे हमर प्रियतम केना क' रमल छथि, से नइँ जानि।

हमर पीड़ा हुनका सोझाँ बड़ कम अछि। हुनक कतेक बड़ाइ करू। ओना हमरा संदेह सेहो होइए जे की हम अमरुख-गमारि छी? आकि प्रिय हमरा सँ मुँह फेरि लेलनि?

[17]

थिर पद परिहरिए जे जन
अथिरें मानस लाब।
सब चाहिहि न दिने दिने खिन
बहु परतर पाब।

साजनि थिर कर मन कए थाक
हठे जे जखन करम करिअ
भल नहि परिपाक।

बुध जन मन बुझि निवेदए
सबे संसारेरि भाव।
जखने जते विभव रहए
तखने तेहि गमाब।
भन विद्यापति सुन तञे जुबति
चितें न झांषहि आन।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रमान।

(रा.पु.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-16)

शब्दार्थ : *खिन—हीन, परतर—उपमा, थाक—रहू, परिपाक—परिणाम, संसारेरि—संसारक, विभव—संपत्ति, पद—आधार, चाहिहि—अपेक्षा।*

पाठ-अर्थ : जे स्थिरता त्यागि अस्थिरताक वरण करैए से दिनानुदिन छोट भेल जाइए आ लोक मे ओकरा लेल अपमानजनक उपनाम सब पसरै छै।
हे सजनि! मन केँ स्थिर केने रहू। जिद पर जँ कोनो काज करब तँ ओकर परिणाम नीक नइँ होयत।
बुद्धिमान लोक, मोनक भाव केँ बुझि क' संसारक भाव व्यक्त करैत छथि। से जतबे साधन हो, ततबे मे सब उपाय करैक चेष्टा कर'क चाही। (जतेक टा चद्दरि ततबे पएर पसारू)
विद्यापति कहै छथि जे हे युवति, मन के भ्रम मे नइँ भोतिआउ।

[18]

पिआ परवास आस तुअ पासहिं
तजे कि बोलह सखि आन।
जे पतिपालक से भेल पावक
इथीं कि बोलत आन॥

साजनि, अघट न घटाबह मोहि।
पहिलहिं आनि पानि पिअतमे गहि
करें धरि सोम्पलहुँ तोहि॥

कुलटा भए जदि पेम बढ़ाइअ
ते जीवने की काज।
तिला एक रंग-रभस सुख पाओब
रहत जनम भरि लाज॥

कुलकामिनि भए निज पिअ बिलसए
अपथें कतहु नहि जाइ।
की मालति मधुकर उपभोगए
किंवा लताँहि सुखाइ॥

विद्यापति कह कुल रखलें रह
दूति वचने नहि काज।
राजा सिवसिंह रूपनराजेन
लखिमा देवि समाज॥

(रा.त./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-31)

शब्दार्थ : *परवास—प्रवास, पावक—अग्नि, इथीं—अतएव, आन—अन्यथा, अघट—अनुचित काज, पानि—हाथ।*

पाठ-अर्थ : पति परदेस मे छथि तँ तों (दोसर मोन) जे संग मे छह से अन्यथा बजबह ? पालनिहार पति आन ठाम चलि गेल छथि तें तों जे नइँ बाज 'क चाही

से बजबह? हे सखि (हमर मोन), अनुचित करैक लेल नहि कहह। पिया, हाथ ध'क' तोरे भरोसे घर मे राखि गेल छथि। कुलटा जकाँ जँ आन सँ प्रेम करब तँ एक क्षणक लेल रंग-रभस के सुख तँ भेटत, मुदा जीवन भरिक लेल लाजक बात भ' जाएत। एहन जीवन कोन काजक? कुलकामिनी अपने पति संग विलास करथु, अधलाह बाट नइँ जाथु। जेना भमरा, मालति रस पीलक तँ बेस, अन्यथा लता सुखा जाइए।

विद्यापति कहै छथि जे रखनहि सँ कुलक मान रहै छै।

[19]

कुल गुन गौरव सील सोभाओ।
सबे लए चढ़लिहुँ तोहरहि नाओ॥

हमे अबला कत कहब अनेक।
आइति पड़लाँ बुझिअ विवेक॥

आइलि सखि जत साथे हमार।
से सबे भेलि निकहि विधि पार॥

हठ तेज माधव कर मोहि पार।
सब तह बड़ थिक पर उपकार॥

हमरा भेलि आबे तोहरिहि आस।
से न करिअ जे हो उपहास॥

तोहें पर-पुरुष हमहुँ पर-नारि।
हृदअ काँप तुअ रीति विचारि॥

भल-मन्द जानि करिअ परिनाम।
जस अपजस पए रह गए ठाम॥

भनइ विद्यापति तोहें गुनमान।
हाथि महतें नब के नहि जान॥

(रा.त./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-34)

शब्दार्थ : *आइति—अधीनता/वश, नाओ—नाव, निकहि—निकसि, सब तह—सब सँ, रीति—रंग-ढंग, महतें—महावत, नब—लीबैए।*

पाठ-अर्थ : कुलक गुण-गौरव आ अपन शील-स्वभाव ल 'क' हम तोहर संग धेलौं। हम अबला छी से आर बेसी की कहब, बेर पड़ला पर लोकक विवेक

बुझ' मे अबै छै।

हठ नहि क'क' हमरा पार उतारह किएक तँ सब ठाँ वैह पैघ जे लोकक उपकार करए।

हम आब तोरहि पर निर्भर छी से एहन किछु नइँ करह जाहि सँ उपहास हो। तों पर-पुरुष छह आ हम पर-नारि छी। तोहर रंग-ढंग देखि क' हृदय काँपि रहलए। से उचित-अनुचित देखि, परिणाम विचारिए क' किछु करह, किएक तँ यश-अपयश टा ठाम पर रहै छै।

विद्यापति कहै छथि जे हे नारि, तों अपने गुणी लोक छह से महावत जकाँ करह जे हाथी केँ वश मे क' लैए। (आ ई बात ककरा ने बुझल छै?)

[20]

निधन काँ जञो धन किछु हो, करए चाह उछाह।
सिआर काँ जञो सींग जनमए, गिरि उपारए चाह॥
दूती! बुझलि तोहरि मती।
छाड़ रे चन्दा भरमइते बूलह, कि हरह ताहे विपती॥

पिपड़ी काँ जञो पाँखि जनमए, अनल कर झपान।
छोटा पानी चह चह कर, पोठी के नहि जान॥
जइअओ जकर मुँह पेंच सन, दूसए चाहए ञान।
हमतह के विषहुँ आगर, ढोंढहुँकाँ थिक भान॥
झरक पानी डोभक कोइ, गरब उपजुँ जाहि।
भनइ विद्यापति दहक कमल, दूसए चाहए ताहि॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-64)

शब्दार्थ : *उछाह—उल्लास, पिपड़ी—चुट्टी, अनल—आगि, झपान—झाँपन, पेंच—उल्लू, आगर—संपन्न, गरब—घमंड, झरक—झरनाक, डोभक—खधियाक, कोइ—कुमुदिनी, विषहुँ आगर—विष सँ भरल*

पाठ-अर्थ : निर्धन केँ जँ धन भेटि जाए तँ ओ छहर-महर कर' लगैए। सियार केँ सिंघ उगय तँ ओ पहाड़े केँ उपाड़' चाहत। हे दूती! तोहर अभिप्राय हम बुझि गेलिय...हे चान! एना जे बौआइत रहै छह ताहि सँ की तोहर विपत्ति दूर होइ छह?
चुट्टी केँ पाँखि जनमै छै तँ ओ आगि केँ झाँप' चाहैए। कनियो पानि मे पोठी चह-चह करैए। जकर अपने मुँह उल्लू सन होइ से अनकर मुँह-दुसैए। ढोंढ़िया साँप केँ होइ छै जे हम तँ विष सँ भरल छी। झरना पानि सँ भरल खधियाक कुमुदिनी केँ सेहो बड़ घमंड आ ओ दहक कमल केँ दुसैए।

[21]

गगन मण्डल उग कलानिधि, कते नेबारबि दीठि।
जखने जे रह तेंहि गमाइअ, जे बह ता दीअ पीठि॥

साजनि! बड़ बथु पर उपकार।
जाहेरि वचने परहित हो, ताहेरि जीवन सार॥

साधुजन काँ परहित लागि, न गुन धन परान।
राहु पिआसल चान्द गरासए, न हो खीन मलान॥

न थिर जीवन न थिर जउवन, न थिर एहे संसार।
गेल अवसर पुनु न पाइअ, किरिति अमर सार॥

कतए राघव राए घरिनी, कतए लंकापुर वास।
कतए हनुमतें साअर लाँघल, किछु न गुनु तरास॥

जखने जकर बांक विधाता, सब कला अनुमान।
अधिक आपद धइरज करब, कवि विद्यापति भान॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-121)

शब्दार्थ : *कलानिधि—चंद्रमा, नेबारबि—मना करब, दीठि—दृष्टि, बथु—वस्तु, जाहेरि—जकर, ताहेरि—तकर, सार—निष्कर्ष, साधुजन—सज्जन, खीन—क्षीण, किरिति—कीर्ति/यश, राघव राए—राजा राम, साअर—सागर, गुनु—विचार करू, तरास—भय, बांक—विपरीत, आपद—आपदा।*

पाठ-अर्थ : आकाश मे चान उगैए तँ देखहि पड़ै छै। से जेम्हर हवा बहै ओहि दिस पीठ क' लेबाक चाही।
उपकार बड़ पैघ वस्तु छी। जकर जीवन पर-हित मे लागल हो तकरे जीवन धन्य अछि।
सज्जन व्यक्ति पर-उपकार करैत अपन धन आ प्राणक चिन्ता नइँ करै अछि।
पियासल राहु, चन्द्रमा केँ खा लैए तैयो चन्द्रमा दुखी नइँ होइ छथि।
ई जीवन, यौवन आ ई संसार किछुओ सदा लेल नहि अछि। अवसर बितला पर घुरि क' नइँ अबै छै। मात्र कीर्ति अमर होइ छै। राजा रामक पत्नी केँ लंकावास कर' पड़लनि। हनुमान बिना भय के सागर नांघि गेलाह। से विपत्तिए पड़ला पर गुणक पहिचान होइ छै। आफद अयला पर धैर्य धारण केनाइए उचित।

[22]

मधु सम वचन कुलिस सम मानस
प्रथमहि जानि न भेला।
अपन चतुरपन पिसुन हाथ देल
गरुअ गरब दुर गेला॥

सखि हे! मन्द पेम परिनामा।
बड़ कए जीवन कएल पराधिन
नहि उपचर एकठामा॥

झाँपल कूप देखहि नहि पारल
आरति चललहुँ धाइ।
तखनुक लघु-गुरु किछु नहि गुनले
आबे पचताबके जाई॥

एक दिन अछलाहुँ आने भाने हमे
आबे बूझल अवगाही।
अपन मूर अपने हमे चाँछल
दोख देब गए काही॥

भनइ विद्यापति सुन बर जउबति
चिते नहि गूनब आने।
पेमक कारन जीउ उपेखिअ।
जग जन के नहि जाने॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-126)

शब्दार्थ : *कुलिस—बज्र, आरति—आतुर, गुरु-लहु—ऊँच-नीच, पिसुन—चुगिला, अवगाही—विचारिक', मूर—माथा।*

पाठ-अर्थ : पहिने नइँ जनलौं जे वचन तँ मधुर छै मुदा मोन बज्र कठोर। अपना होशियारी मे हम चुगिलाक जाल मे फँसि गेलहुँ। जे पैघ गौरव छल से नष्ट भ' गेल।

प्रेमक परिणाम बड़ अधलाह। अपने सँ अपन जीवन केँ अनकर अधीन क' देल, आब तकर कोनो उपचार नइँ। आतुरता मे हम नइँ देखल जे इनार पर झाँपन देल छै। तखन तँ ऊँच-नीच किछु विचार नइँ कएल। आब जखन कूप मे पड़लौं तँ पश्चाताप भ' रहलए। एते दिन हमरा किछु आने बुझा रहल छल। आब विचारि क' देखल तँ लगैए जे हम अपने सँ अपन नोकसान क' लेलौं। आब आन ककरा दोख देबै। विद्यापति कहै छथि जे हे युवती! प्रेमक कारणें तँ जीवनक उपेक्षा होइते रहलैए से जग भरि मे के नइँ जनैए।

[23]

मोराहि रे अंगना चांदन केरि गछिआ
ताहि चढ़ि कुराए काग रे।
सोने चञ्चु बंधए देब मोए बाअस
जओ पिआ आओत आज रे।

गाबह-गाबह सहि लोरि झुमरि
मअन अराधने जाञु रे।
चउदिसि चम्पा मउलि फूललि
चान्द उजोरिअ राति रे।

कइसे कए मञे मअन अराधबा
होइति बड़ रति-साति रे।
बांक समय कागा केओ न अपन हित
देखल आँखि पसारि रे।

विद्यापति कविवर इहो गाबिआ
तोंके अछ गुनक निधान रे।
राउ भोगीसर सब गुने नागरा
पदमा देहच रमान रे।

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-224)

शब्दार्थ : *चञ्चु—चोंच/लोल, सहि—सखी, मअन—मदन/कामदेव, रति-साति—प्रेमक समाप्ति, बांक—विपरीत, मउली—भालसरि।*

पाठ-अर्थ : हमरा आँगनक चानन गाछ पर कौआ कुचरैए। हे काग! जँ हमर प्रिय आइ अओता तँ तोहर लोल सोना सँ मढ़ा देबह।
(सखि—एक मोन) कहैए जे लोरी-झूमरि गाबह आ चलह मदन-आराधनाक जोगार करी। चारूभर चम्पा, भालसरि फुलाएल अछि आ चानक इजोत सँ राति सोहाओन अछि। (दोसर मोन) कहैए जे केना क' हम मदन अराधब (पर-पुरुष गमन करब) ? एहि सँ तँ प्रेमक समाप्ति होएत। हे कागा! आँखि खोलि क' देखि लेल, जखन समय विपरीत रहै छै, तँ केओ हीत नइँ होइ छै, हीत बनि क' अधलाह सलाह दै छै। विद्यापति कहै छथि जे तों गुणक निधान छह जेना कि पदुमा देवीक पति राउ भोगीसर समस्त नागर (नागरिक)-गुण सँ युक्त छथि।

[24]

जनम कृतारथ सुपुरुष संग
सेहे दिवस जओ नहि मन भंग।

हृदयक आनन्दें मुख परगास
तरनि तेजें हो कमल विगास।

भल भेल माइ हे कुदिवस गेल
हरि निधि मिलल सकल सिधि भेल।

एक दिस मनिमय नव निधि हेम
अओका दिस नव सुपुरुष पेम।

निकुती तौलि कएल अनुमान
प्रीति अधिक थिक के नहि जान।

प्रीतिक सम हे दोसर नहि आन
जाहि तुलना दिअ अपन परान।

भनइ विद्यापति अनुपम रीति
दम्पति काँ हो अचल पिरीति।

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-226)

शब्दार्थ : *कृतारथ—सफल, परगास—प्रगट, विगास—विकास/प्रस्फुटन, सिधि—सिद्धि, निकुती—सोनारक तराजू, अओका—दोसर।*

पाठ-अर्थ : सुपुरुषक संग सँ जन्म सफल होइए। ओ दिन सफल जाहि दिन कोनो मन मुटाव नहि हो।
हृदयक आनन्द सँ सुख प्रगट होइए जेना सूर्यक तेज सँ कमल फुलाइए।
नीक भेल जे दुर्दिन चलि गेल। प्रियतम सनक संपत्ति भेटल तँ बुझल जे समस्त सिद्धिक प्राप्ति भ' गेल।
एक दिस मणिमय नवो निधि तँ दोसर दिस नव-रस युक्त सुपुरुष प्रेम। निकुती पर जोखि क' देखल तँ पाओल जे प्रेमक ओजन बेसी छै।
प्रेमक तुलना प्राण सँ भ' सकैए आर ककरो सँ नहि।
विद्यापति कहै छथि जे प्रेम अनुपम व्यवहार छी जे दम्पति मध्य अचल रहओ।

[25]

अहे सखि! अहे सखि लए जनु जाह
हम अति बालक, निरदय नाह।

बोल-भरोसे दस सखि गेलि लेआए
पहुक पलंग पर देलन्हि बैसाए।

गोट-गोट सखी सब गेलि बहराए
बजर केबाड़ हुनि देलन्हि लगाए।

ताहि अवसर सखि घएलन्हि कन्त
चीर सम्हारइते जिव भेल अन्त।

नहि-नहि करिअ नयन ढर नोर
काँच कमल भमरा झकझोर।

जइसे डगमग नलिनीक नीर
तइसे डगमग धनिक शरीर।

भनइ विद्यापति तखनुक रीति
युग-युग बाढ़ओ पहुक पिरीति।

(ग्रि./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-110)

शब्दार्थ : *नाह—पति, नलिनीक नीर—कमलक पात परहक जल-बिन्दु*

पाठ-अर्थ : हे सखि, हमरा पहुक घर नहि ल' जाह। हम एखन छोट छी आ ओ निर्दयी छथि।
बुझा-सुझा क' भीतर ल' गेली आ पहुक पलंग पर बैसा देलनि। फेर बेरा-बेरी सब सखी बहरा गेली आ पहु केबाड़ लगा देलनि। फेर ओ हमर हाथ धएलनि से हमरा तँ अपन वस्त्र सम्हारनाइए जानक जपाल भ' गेल।
नहि-नहि करैत रहलौं, आँखि सँ नोर खसैत रहल, मुदा भमरा काँच-कमल केँ झमारैत रहल।
जेना पुरइनिक पात पर पानि डगमग करैए तहिना धनीक शरीर कँपै छल।
विद्यापति कहै छथि जे ई तँ ओहि कालक रीति छियै। सुपहु संग धनीक प्रेम युग-युग बढ़नु।

[26]

झञ्झ घन गरजन्ति संतति
गगन भरि बरखन्तिया।
कान्त पाहुन काम दारुण
सघन खर शर हन्तिया॥

सखि हे! हमर दुखक नहि ओर।
इ भर बादर माह भादर
शून्य मंदिर मोर॥

कुलिश शत शत पात मोदित
मउर नाचत मातिया।
मत्त दादुर डाके डाहुकि
फाटि जाएत छातिया॥

तिमिर भरि अति घोर यामिनि
अथिर बिजुरिक पांतिया!
विद्यापति कह कइसे गमाओब
हरि बिनु इहो रातिया॥

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-150)

शब्दार्थ : *झञ्झा—अन्हड़, संतति—लगातार, ओर—अंत, कुलिश—बज्र, शत-शत पात—सैकड़ो बेर प्रहार, मोदित—प्रसन्न, मत्त—मातल, दादुर—बेंग, डाके—जोर सँ बजैए, डाहुकि—पपीहा/कोइली, यामिनि—राति, अथिर—चंचल।*

पाठ-अर्थ : अन्हर-बिहाड़िक संग मेघ लगातार गरजि रहलए, सौंसे बरखा भ' रहल छै आ हम एसगर छी! ई मेघ भरल भादब मास...आ हम एसगर छी। घर सुन्न छै!... एहनो कतहु दुख भेलैए जकर कोनो अंत नइँ! बिजलौका जे लौकै छै बज्र जकाँ बेर-बेर ताहि सँ मयूर पुलकित छै आ झाड़ि क' नचैए। बेंगक फराक राग-तान छै, कोइली-पपीहाक अपन ताल-भाँज छै...सुनै छी तँ लगैए जे करेज दरकि जाएत...छाती फाटि जाएत। घनघोर अन्हार राति, ताहि मे रहि-रहिक' लौकैत बिजलौका...एहन राति मे एसगरि...राति केना काटब?

[27]

अंकुर तपन तापें जदि जारब
कि करब वारिद मेहे।
इ नव जउवन विरहें गमाओब
कि करब से पिआ नेहे॥

हरि! हरि! कइसन दैव दुरासा।
सिन्धु निकटे जदि कण्ठ सुखाएब
के दुर करब पिआसा॥

चन्दन तरु जब सउरभ छोड़ब
शशधर बरिखब आगी॥
चिन्तामनि जब निज गुन छोड़ब
की मोर करम अभागी॥

साओन मह घन बिन्दु न बरिखब
सुरतरु बाँझ कि छन्दे।
गिरिधर सेबि ठाम नहि पाओब
विद्यापति रहु धन्धे॥

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-151)

शब्दार्थ : *तपन—सूर्य, सउरभ—सुगंधि, शशधर—चान, चिन्तामनि—रत्न (इच्छा पूर्ति कारक), मह—मास, छन्दे—छान मे, धन्धे—काज-धंधा।*

पाठ-अर्थ : सूर्य के ताप सँ अंकुर जरि जाए तँ फेर बरखा भेनहि की? का बरखा जब किरिस सुखाने! से ई समय आ पार्थक्य! एहन नेह के की माने? सागरक समीप जँ कंठ सुखाएले रहत तखन के पिआस मेटाओत? ई तँ बड़ पैघ दुराशा देल हौ दैब!
चाननक गाछ अपन सुगन्धि छोड़ि दिअए, चान महराज आगि बरिसाबथु, चिन्तामणि अपन गुणक त्याग करत तखन, ई भाग्यहीन हम, कोन उपाय करब? साओन मास बरखा नहि हो, कल्पतरु केँ बान्हि-छान्हि क' बाँझ बना देल जाए...तँ की कहब? ठाम नइँ भेटत? विद्यापति कहै छथि जे इएह ओझरि छनि मोन मे।

[28]

सखि हे! कि पुछसि अनुभव मोए।
सेहे पिरीति अनुराग बखानिअ
तिले तिले नूतन होए।

जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपित भेल।
सेहे मधुर बोल स्रवनहि सूनल
स्रुतिपथे परसि न गेल॥

कत मधु-जामिनि रभसे गमाउलि
न बुझल कइसनि केलि।
लाख लाख जुग हिअ हिए राखल
तइओ हिअ जुड़न न भेलि॥

कत विदगध जन रस अनुमानल
अनुभवि काहु न पेख।
विद्यापति कह प्रान जुड़ाइते
लाखे न मीलल एक॥

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-180)

शब्दार्थ : *स्रुति पथे—कान, हिअ—हृदय, हिए—जोगाक', जुड़न—शीतलता, विदगध—प्रेमी/रसिक।*

पाठ-अर्थ : हमर अनुभव की पुछै छी ? हमरा लेल तँ ओहि प्रीति के अनुराग-वर्णन कठिन अछि जे क्षण-क्षण नव होइत हो!
भरि जन्म रूप देखलौं मुदा आँखि नइँ जुड़ाएल, तृप्त नहि भेल। अमृत समान बोली सुनैत रहलौं मुदा लगैए जे कान मे किछु पैसबे नइँ कएल, किछु सुनबे नइँ केलौं।...
मधुमासक कतेको राति, संगहि रहलौं मुदा नइँ कहि सकब जे केलि की छियै!
जकरा कहिआ कत' सँ ने हृदय मे जोगा क' रखलौं, परंतु हृदय शीतल कहाँ भेल ?
कतेको प्रेमी-रसिक एहि प्रेम-रसक अनुमान कर' चाहलनि मुदा किनको किछु पता नइँ चलल।
विद्यापति कहै छथि जे हृदय केँ जुड़ाब' बला लाखो मे एक टा भेल तँ बड़ भेल...

[29]

ए हरि, ए हरि, सुनिअ स्रवन भरि
अब न विलासक बेरा।
गगन नखत छल सेहो अबेकत भेल
कोकिल करइछ फेरा॥

चकबा मोर सोर कए चुप भेल
ओठ मलिन भेल चन्दा।
नगरक धेनु डगर कर सञ्चर
कुमुदिनि बसु मकरन्दा॥

मुख केर पान सेहओ रे मलिन भेल
अवसर भल नहि मन्दा।
विद्यापति भन इहो न नीक थिक
जग भरि करइछ निन्दा॥

(ग्रि./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-293)

शब्दार्थ : *स्रवन—कान, नखत—नक्षत्र/तारा, अबेकत—अव्यक्त, ओठ—किनारी।*

पाठ-अर्थ : हे महाराज! कान खोलि क' सुनू। आब विलासक (सुतबाक) बेर नहि रहल। आकाश सँ तारा सब बिला गेल। कोकिल कलरव क' रहल अछि।

चकबा सेहो सोर करैत अकच्छ भ'क' चुप भ' गेल। चानक कोर मलिन भ' गेलनि। नगरक माल-जाल बाट पर बहरा गेलए। कुमुदिनि अपना मे पराग मूनि लेलनि। मुँहक पान सेहो खतम भ' गेल। (सुतबाक लेल) आब नीक नहि अधलाह समय छी। विद्यापति कहै छथि एहन (असमय सुतनिहार) केर संसार भरि मे निन्दा होइए।

[30]

बरिस सघन घन पेमे पुरल मन
पिआ परदेस हमारे।
ऐसनि पाउस राति पुरुष कँमन जाति
गृह परिहरइ गमारे॥

सजनी दुर कर दुरजन नामे।
तोहहि सआनि धनि अपन परान सनि
ते करिअ चित बिसरामे॥

कमल फूल विगसु केओ बोल मअन हसु
भमरा भमरि विवादे।
मुइल कुसुमधनु से कैसे जिउल पुनु
कि बोलब हर परमादे॥

बिजुरि चमक घन बिसहर बिसहरे
उनमुखे नाच मयूरे।
कदम पवन बह से कइसे जुबति सह
हृदय भमइ कति दूरे॥

(रा.पु.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-78)

शब्दार्थ : *पेमे—प्रेम सँ युक्त, पाउस—पावस, परिहरइ—छोड़ए, गमार—मूर्ख, विगसु—विकसित, कदम—कदम्ब, उनमुखे—उपर मुँह क'क', कुसुमधनु—कामदेवक धनुष।*

पाठ-अर्थ : हमर मोन प्रेम सँ भरल अछि, बरखा जोर सँ भ' रहल छै आ हमर प्रिय परदेस गेल छथि। कहू तँ ई केहन अछि पुरुषक जाति जे वर्षाक एहन राति मे घर सँ बाहर अछि। ई तँ मूर्खेक काज भेल?
(हे मन) कथी लेल दुरजनक नाम लै छह। तों तँ अपने ज्ञानी छह। अपना प्राणक समान मानै छहक। से अपन चित्त केँ स्थिर करह।
कमल जे फुलाइए तँ केओ कहैए जे ई कामदेवक हँसी थिक। (एहि पर) भमरा-भमरी मे विवाद भ' गेलै जे कामदेव तँ भस्म भ' गेल छल तखन फेर जीअल केना? की एकरा (कामदेवक मृत्यु) महादेवक प्रमाद बुझल जाए।
मेघ मे बिजुरी चमकैए। सौंसे साँपे-साँप सह-सह करैए। उपर मुँह उठा क' मयूर नाचि रहलए। कदम्बक सौरभ लेने जे बसात बहैए से कोना सहत? मोन कत'-कहाँ बौआइ छै।

[31]

सखि हे!
बालँभ जितब विदेसे।
हमे कुलकामिनि कहइतें अनुचित
तोहहिं देहुन्हि उपदेसे॥

ई न विदेसक बेली।
दुरजने हमर दुख न अनुमापब
तजे तोहेँ पिआ लगे लएली॥

किछु दिन करथु निवासे।
हमे पूजल जे सेहे पए भुञ्जब
राखथु पर उपहासे॥

होएताहे किए बधभागी।
जहि खने हुन्हि मने माधव चिन्तब
हमहुँ मरब धसि आगी॥

विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रमाने॥

(रा.त./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-51)

शब्दार्थ : *बाँलभ—बलम/पिया, जितब—जएताह, पूजल—कर्म कएल, भुञ्जब—भोगब, अनुमापब—अनुमान करब, सेहे पए—ओकरे/ओएह।*

पाठ-अर्थ : हे सखि! पिया परदेस जेबाक नियार करै छथि। हम कुलवन्ती छी ने, केना क' कहबनि, तोंही हुनका बुझबहुन।
ई जे समय अछि से परदेस जेबाक नइँ। कोनो दुरजन हमर दुख नइँ बुझि सकैए। तें तोरा सँ आग्रह करै छी।
किछु दिन रहथु ने! फेर तँ अपन करनीक फल हमरा भोगहि पड़त। एखन तँ अनकर उपहास सँ बचथु।
जखने ओ परदेसक बात सोचताह हम आगि लगा क' मरि जाएब। से ओ किए (स्त्री) बध के भागी होइ छथि?

[32]

माधव हमर रटल दुर देस।
केओ न कहए सखि कुसल-सन्देस॥

जुग-जुग जिबथु बसथु लाख कोस।
हमर अभाग हुनक नहि दोस॥

हमर करमे भेल बिहि विपरीत।
तेजलन्हि माधव पुरुब पिरीत॥

मरमक वेदन बान समान।
आनक दुख सखि आन न जान॥

भनइ विद्यापति न पुरल काम।
कि करत नाह दैव भेल वाम॥

(ग्रि./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-534)

शब्दार्थ : *बिहि—विधाता, पुरुब—पहिनेक, मरमक—हृदयक, नाह—नाथ/स्वामी*

पाठ-अर्थ : हमर माधव दूर देस गेल छथि। ओम्हर सँ कोनो चिट्ठी-पतरी नइँ अबैए जे केना की छथि से बुझितहुँ।
भले लाख कोस दूर बसथु मुदा जुग-जुग जिबथु। हमरे भाग्य खराब अछि जे ओ दूर देस मे छथि, हुनकर कोनो दोष नइँ। हमरे करम एहन जे विधाता विमुख भ' गेला। फलतः हमर माधव, हमर पूर्वक प्रीति केँ बिसरि बैसलाह।
विरह-वेदना, बाण जकाँ हृदय केँ बेधैए। दोसर केओ एहि पीड़ा केँ नहि जानि सकैए।
विद्यापति कहै छथि जे माधव (नाह) की करताह जखन दैवे वाम भेल छथि।

[33]

के पतिआ लए जाएत रे
मोर पिअतम पास।
हिअ नहि सहए असह दुख रे
भेल साओन मास॥

एकसरि भवन पिआ बिनु रे
मोहि रहल न जाए।
सखि अनकर दुख दारुन रे
जग के पतिआए॥

मोर मन हरि हरि लए गेल रे
अपनेहुँ मने गेल।
गोकुल तेजि मधुपुर बस रे
कत अपजस लेल॥

विद्यापति कवि गाओल रे
धनि धरु मन आस।
आओत तोर मनभाओन रे
एहि साओन मास॥

(लो.कं./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-578)

शब्दार्थ : *पतिआ—चिट्ठी, हरि—स्वामी, हरि—हरण*

पाठ-अर्थ : हमर प्रियतमक ओत' के चिट्ठी ल' जाएत ? हृदयक दुख असह्य अछि उपर सँ साओन मास आबि गेल।
पिया बिना घर मे एसगर नहि रहल जाइए। ककरो दुख कतबो दारुण किएक ने हो आन केँ विश्वास नइँ होइ छै।
अपने मोने चलि गेलाह आ संग मे हमरो मोनक हरण क'क' ल' गेलाह। अपन घर त्यागि क' आन ठाम बसि गेलाह। अपजसक चिन्ता नइँ केलनि।
विद्यापति कहै छथि जे मन के आस जोगौने रह। तोहर प्रियतम एहि साओन मास मे एबे करथुन।

[34]

मोर पिअतम सखि गेल दुर देस। जीवन दए गेल साल संदेस।

मास असाढ़ उनत नव मेघ। पिआ विसलेखे रहओ निरथेघ
कओन पुरुख सखि कओन से देस। धरब तहाँ मओ जोगिनि बेस।

साओन मास बरिस घन वारि। पंथ न सूझए निसि अंधियारि
चौदिस देखिअ बिजुरी रेह। हे सखि कामिनी जिवन संदेह।

भादव मास बरिस घनघोर। सभदिस कुहकए दादुर मोर
चेऊंकि-चेऊंकि पिआ कोर समाए। गुनमति सूतलि, आँकम लगाए।

आसिन मास आस धर चीत। नाह निकारुन भेल न हीत।
सरवर खेलए चकबा हाँस। विरिहिनि बैरि भेल आसिन मास।

कातिक कन्त दिगन्तर वास। पिअ पथ हेरि हेरि भेलहुँ निरास।
सुख सुखराति सबुहिकाँ भेल। हम हिअ सालि सामि दए गेल।

अगहन मास जीव गेल अन्त। अबहु न आएल निरदय कन्त।
एकसरि हमे धनि सूतओ जागि। नाह देलनि विरह मोहि आगि।

पूस खीन दिन दीघरि राति। पिआ परदेस मलिन भेल कांति।
हेरओ चौदिसि झाँखओ रोइ। नाह बिछोह काहु जनु होइ।

माघ मास घन पड़ए तुषार। झिलमिल केचुआ उनत थन हार।
पुनमति सूतलि पिअतम कोर। विधिबसे दैव वाम भेल मोर।

फागुन मास धनि जीव उचार। विरहे बिखिन भेल हेरओ बाट।
आओल वसंत पिक पञ्चम गाव। से सुनि कामिनि जिवहु संताब।

चैत चतुरपन पिआ परबास। मालि न जानए कुसुम विकास।
भमि-भमि भमरा कर मधुपान। नागर भए पहु भेल असओान।

बैसाख तबए खर मरन समान। कामिनि कन्त हनए पञ्चवान।
नहि जुड़ि छाहरि न बरिस बारि। हम जे अभागिनि पापिनि नारि।

जेठ मास उजर नव रंग। कन्त चहए खलु कामिनि संग।
रूपनराएन पूरथु आस। भनइ विद्यापति बारह मास।

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-569)

शब्दार्थ : *साल—काँट, विसलेखे—विरह, रेह—रेखा, उनत—उन्नत, निरथेघ—आशा रहित, धरब—भ्रमण करब, चेऊंकि—चौंकि, चीत—चित्त, निकारुन—निरदय, खीन—छोट, दीघरि—पैघ, तुषार—पाला, असञान—अज्ञान, दिगन्तर—परदेस, खर—तीव्र, बारि—जल , सरवर-सरोवर/पोखरि, सालि—दुख/वेदना, दीघरि—दीर्घ/पैघ, संताब—संताप, हनए—आहत करय।*

पाठ-अर्थ : प्रियतम दूर देस गेला। जीवनक लेल दुख-सनेस द' गेला। अषाढ़ मास मे मेघ लागल अछि आ पियाक विरह मे हम निराशा मे पड़ल छी। साओन मास मे बरखा भ' रहलए, दिने मे एहन अन्हार छै जे बाट नइँ सुझए। चारूभर बिजुरी चमकै छै आ कामिनीक जीवन भार भेल छै। भादवक घनघोर बरखा मे सब ठाम मोर आ बेंग बाजि रहलए। भाग्यशाली कामिनी एहना मे चौंकि-चौंकि पियाक अंग लगै छथि। आसिन मे चित मे आशा राखल मुदा निर्दय पिया हमर हीत नइँ भेला। सरोवर मे चकबा-हंस खेल करैए, विरहिनीक लेल आसिन मास दुश्मन छी। कातिको मे पिया परदेसे रहलाह, हम बाट तकैत निराश भेलौं। आन लोक सुखराति पाबनि केलक, हमरा हिआ केँ स्वामी कष्ट देने रहला। अगहन मे प्राणान्त सन लागल मुदा कठोर पिया नहिए अयलाह। हम एकाकी जगले सुतै छी आ नाथक देल विरहक आगि मे जरै छी। पूसक दिन छोट आ राति पैघ भेल, परदेसी पिया दुआरे देहक कांति मलिन भ' गेल। चारूभर देखि झखैत कनै छी। ककरो नाथक विछोह नइँ होइ। माघ मास घनघोर पाला पड़ैए। जे भाग्यशालिनी छथि से प्रियतमक कोर मे सुतै छथि। हमर तँ दैबे वाम भेल छथि। फागुन मे मोन मे उचाट ध' लेलक। विरह सँ खिन्न भेल बाट तकैत रहलौं। कोइली पंचम स्वर मे गबैए आ कामिनीक हृदय केँ संताप सँ भरैए। चैत मे पिया परदेसे। नीक लोक होइतो ओ अबोध भेल छथि। बैसाख मे तेज रौद सँ मरण सन लगै आ कामिनीक हृदय केँ पंचबान सँ बेधै छै। ने कत्तौ जुड़ेबाक लेल छाहरि छै ने बरखा होइ छै। जेठ अबैत-अबैत रंग उड़' लागल। कामिनी केँ कन्तक कामना लगले रहल।

[35]

सासु जरातुरि भेली
ननन्दि अछलि सेहो सासुर गेली।

तइसन न देखिअ कोइ
रयनि जगाइ सम्भासन होइ।

एहि पुर एहे बेबहारे
काहुक केओ नहि करए पुछारे।

मोर पिअतमकाँ कहबा
हम एकसरि धनि कत दिन रहबा।

पथिक कहब मोर कन्ता
हम सन रमनि न तेज रसमंता।

भनइ विद्यापति गाबे
भमि भमि विरहिनि पथुक बुझाबे।

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-607)

शब्दार्थ : *जरातुरि—वृद्धा, रयनि—राति, सम्भासन—बातचीत*

पाठ-अर्थ : सासु वृद्धा छथि। ननदि सासुर चलि गेली। तेहन ककरो नइँ देखै छी जकरा सँ राति मे जगा क' बातचीत क' सकी।
एहि नगरीक इएह व्यवहार छै। केओ ककरो खोज-पुछारि नइँ करैए।
हमरा प्रियतम केँ कहबनि जे एसगर हम आर कत्ते दिन रहब। बटोही! हमर स्वामी केँ कहबनि जे हमरा सन रमणी केँ तेजनाइ हुनका सन रसमंत केँ शोभा नइँ दै छनि।
विद्यापति गबै छथि जे विरहिनी घुमि-फिरि क' बटोही केँ बुझबै छथि।

[36]

माधव बुझल तुअ गुन आजे।
पचगुन दसगुन सएगुन दसगुन
सेहओ देलह कोन काजे।

चालिस काटि चारि चौठाई
से हम से पहु मोरा।
कपटी कान्ह केलि नहि जनलन्हि
कएलन्हि जन्मक ओरा।

साठि काटि दइ विन्दु विवरजित
सेवत कर उपहासे।
पहुक विसाद सहए नहि पारिअ
दुइ बुन करब गरासे।

नवो बुना दए नवो वाम कर
से उर हमर पराने।
से हरखित मूह-हेरि होअए नहि
कारन केओ नहि जाने।

भनइ विद्यापति सुन वरजौवति
करटि केअ बाधा।
अपन जीव दए परहि बुझाबिअ
कमल नाल दुइ आधा।

(ग्रि./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-615)

शब्दार्थ : *पचगुन दसगुन सएगुन दसगुन—1×5×10×10×10=50000 बेर सप्पत। चालिस काटि चारि चौठाई—40-4÷4=9=नव=नवयौवन। साठि काटि दह बिन्दु विवराजित—60-10=50 मे सँ शून्य हटाउ=5=पाँच=पाँच लोक मे। दुइ बुन—2 पर 0=20=बिस जहर। नवो बुना दए नवो वाम कर—नौ टा शून्य केँ वामा मे नौ=9000000000=नौ पद्म=नवपद्म=नव कमल।*

पाठ-अर्थ : आइ हम तोहर असली गुण केँ बुझल। पचास हजार बेर सप्पत खेलह से कोन काजक भेल ? हम नवयौवना छी आ पहु नवयुवक छथि। मुदा कपटी पिआ केलि नहि जानलनि आ हमरा जीवनक अंत क' देलनि। तों हमरा पाँच लोकक बीच उपहास करा देलह। आब तोहर विषाद तेहन भेल जाइए जे विष खा लेब। नव पद्म सन हमर हृदय हमर प्राण। तैयो तोरा हमरा दिस प्रसन्नता सँ देखनाइ पार नइँ लगै छह। एकर कारण की भ' सकैए से केओ नइँ जनैए। विद्यापति कहै छथि जे हे नवयुवती ! अपन प्राण द'क' अनका बुझओनाइ ओहिना भेल जेना कमल केँ नाल सँ फराक केनाइ।

[37]

आबह संग सहलोलिनि रे
चन्दन बन जाउ।
चन्दन वन जुड़ि छाहरि रे
मेरि झूमरि गाउ।

झुमरि गबइते चंचलि रे
भेलि नागरि बाला।
उतर दखिन धुनि सुनिअ रे
रूनुझुनु बाज ताला।

उतर लाट के सीन्दुरा रे
दक्खिन के सारी।
सेहे पहिरि आराधिअ रे
सखि गौरि भरारी।

गौरि पुजि वर माँगिअ रे
किअ किअ फल पाबे।
नव नेहा नव रितुपति रे
नव बालँभु आबे।

विद्यापति कवि गाओल रे
झुमरि रसमन्ता।
गरुड़नराएन रमनी रे
हासिनि देखि कन्ता।

(लो.कं./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-708)

शब्दार्थ : *मेरि—मिलि, ताला—ताल, नवनेह—नव प्रेम, रितुपति—वसंत*

पाठ-अर्थ : आबह सखि सब, चानन बनि जाइ। चानन-वन के शीतल छाहरि मे झूमरि गाएब।
झूमरि गबिते मे (सियान बाला) चंचल भ' गेली। उत्तर-दक्षिण मे किछु रुनूझुन ताल पर बाजि रहलए।
उत्तर (देखि)क सिन्दूर आ दक्षिण (देखि)क साड़ी पहिरि बाला गौरी पूजलनि। गौरी सँ की-की मँगलनि ? मँगलनि जे नेह-नव हो, नव वसंत हो आ नवता सँ भरल वल्लभ (प्रेमी) होथि।

[38]

अनुखन माधव माधव सुमरिते
सुन्दरि भेलि मधाइ।
ओ निज भाव सोभावहि बिसरल
अपनेहि गुन लुबुधाइ॥

माधव! अपुरुब तोहर सिनेह।
अपने विरहें अपन तनु जरजर
जिबइते भेल सन्देह॥

भोरहिं सहचरि कातर दिठि हेरि
छल-छल लोचन पानि।
अनुखन राधा राधा रटइते
आधा आधा बानि॥

राधा सञो जब पुन तहि माधव
माधव सञो जब राधा।
दारुन भरम तबहु नहि टूटइ
बाढ़इ विरहक बाधा॥

दुहु दिस दारु दहन जइसे दगधइ
आकुल कीट परान।
अइसन वल्लभ हेरि सुधामुखि
कवि विद्यापति भान॥

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-175)

शब्दार्थ : *अनुखन—सतत, लुबुधाइ—ललचाइ, जरजर—निर्बल, कातर—आर्त्त, दिठि—दृष्टि, लोचन—आँखि, बानि—बाणी, दारु—काठ, दहन—जरनाइ*

पाठ-अर्थ : हरदम कृष्णक स्मरण करैत राधा स्वयं अपना केँ माधव बुझि बैसलीह आ अपने पर (राधा) मुग्ध भ' अपने (माधव) विरह मे जर' लगलीह। करुण दृष्टि, लोचन मे पानि, हरदम राधा-राधा रटैत आधा-आधा बाज' लगलीह। जखन अपना केँ राधा बुझथि तँ कृष्णक विरह मे जरथि आ जखन अपना केँ कृष्ण बुझथि तँ राधाक विरह मे जरथि। हिनक हालति काठ परहक ओहि कीड़ा जकाँ भ' गेल छनि जकर (काठक) दुनू भाग मे आगि लागल हो। एहि दिस जाए तैयो जरए, ओहि दिस जाए तैयो जरए।

[39]

फुल एक बाड़ी लाओल मुरारि।
जतने पटाओल सुवचन वारि॥

चउदिस बान्धल सीलक आरि।
जिव अवलम्बन करु अवधारि॥

तथिहुँ फुलल फुल अभिनव पेम।
जसु मुल लहए न लाखहु हेम॥

अति अपुरुब फुल परिनत भेल।
दुइ जिव अछल एक भए गेल॥

पिसुन कीट नहि लागल ताहि।
साहसे फल देल विहि निरवाहि॥

विद्यापति कह सुन्दर सेह।
कएले जतने फलमन्त होअ जेह॥

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-147)

शब्दार्थ : *लाओल—लगाओल, वारि—जल, सील—शील/विवेक, पिसुन—दुष्ट/कुकर्मी, पेम—प्रेम*

पाठ-अर्थ : एक टा फूलक गाछ रोपल। तकरा सु-वचनक जल सँ पटाओल। गाछक चारूभर शील-मर्यादाक बेढ़/टाट लगाओल। जीवनक अवलम्बन बनेबाक लेल एहन सतर्क होबहि पड़त। गाछ मे अनुपम प्रेमक फूल फुलाएल जकरा जड़ि पर ककरो प्रभाव नहि।
फूल तँ अत्यंत अपरूप भ' गेल, माने दू टा जीव छल एक भ' गेल।
चुगिला-दुष्ट रूपी कीड़ा ओकरा नइँ लागल। जखन अपने साहस करब तँ विधाता सेहो निमाहिए देताह।
विद्यापति कहै छथि जे सुन्दर ओएह जे फलमन्त होइए।

[40]

आंगने आओब जब रसिआ
पलटि चलब हम ईसत हसिआ।

आबेसे आञ्चर पिआ धरबे
जाएब हम न जतन पहु करबे।

कञ्चुअ धरब जब हठिआ
करे कर बारब कुटिल अध दिढिआ।

रभस मांगब पिआ जबही
मुख मोड़ि बिहुसि बोलब नहि तबही।

सहजहि सुपुरुष भमरा
चिर धरि पिअब अधर रस हमरा।

तैखन हरब मोर चेतने
विद्यापति कह धन तोर जीवने।

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-177)

शब्दार्थ : *ईसत—कनेक, अध-दिढिया—आधा आँखि मुनिक', आबेसे—हठपूर्वक, रभस—काम क्रीड़ा, अधर—ठोर।*

पाठ-अर्थ : ई पिआ आगमनक पूर्वक कल्पना छी।
रसिया जखन आँगन अओता तँ कने हँसि क' पलटि चलब। आवेश मे पिआ आँचर धरताह, हम हुनकर प्रयास केँ रोकब। देह-हाथ धरैक प्रयास करता, हाथ सँ हुनकर हाथ टारैत आधा मूनल आँखि सँ देखब।
पिया रंग-रभस चाहताह। हम कहबनि एखन नइँ बाद मे।
सुपुरुष मुदा भमरा होइए। अधर-रस पीब' लगता तँ हमर चेतनाक हरण भ' जाएत।
विद्यापति कहैत छथि जे एहन जीवन धन्य अछि।

[41]

बारिस निसा मोञे चलि अइलिहुँ सुन्दर मन्दिर तोर।
कत महि अहि देहे दमसल चरने, तिमिर घोर॥

निज सखि-मुख सुनि सुनि कहु बसि भेलिहुँ पेम तोहार।
हमे अबला सहए न पारल पञ्चसरक परहार॥

नागर! मोहि मने अनुताप।
कएलाहु साहस सिधि न पाबिअ अइसन हमर पाप॥

तोह सन पहु गुन निकेतन कएलह मोर निकार।
हमहु नागरि सबे सिखाउबि जनु करिअए अभिसार॥

कत न नागर गुनक सागर सबे न गुनक गेह।
तोह सन जग दोसर नाहि तञे हमे लाओल नेह॥

केलि कुतूहल दुरहि रहओ, दरसनहुँक सन्देह।
जामिनि चारिम पहर पाओल बरु जाञो निज गेह॥

मोरिओ सबे सहचरि जानति होइति ई बड़ि साति।
बिहि निकारुन परम दारुन मरञो हृदय फाटि॥

भनइ विद्यापति सुनह जुवति आसा नहि अवसान।
सुचिरे जीबओ राए सिवसिंह लखिमा देइ रमान॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-135)

शब्दार्थ : *महि—पृथ्वी, अहि—साँप, दमसल—पीचल, निकार—निरादर, अनुताप—दुख, सिधि—सिद्धि, गेह—घर, साति—शास्ति/दंड, मंदिर—घर, निकारुन—निरदय*

पाठ-अर्थ : रातुक अन्हार, झहरैत बरखा मे हम, भूमि पर कतेक साँपक देह पर लात दैत तोरा घर अएलहुँ। लोकक मुँह सँ प्रशंसा सुनि क' हमरा तोरा पर आस्था भ' गेल। कामदेवक पंचवान-प्रहार सहल नइँ गेल। हे नागर! हम साहस केलौं मुदा तकर सिद्धि नइँ भेटल। तकर दुख अछि। तोरा सन गुणवान हमर अनादर केलक, हमहूँ नागरि छी, हमहूँ आब अभिसारक विरुद्ध-प्रचार करब। बड़-बड़ नागर-नागरि छथि, सब गुणीए नइँ। तोरा सन दोसर नइँ तें तँ तोरा सँ नेह लागल। आब तँ केलि-कुतुहल सँ फराक, दर्शन पर्यंत मे संदेह। रातुक चारिम पहर आएल, आब घर चली। सखी सब जनतीह तँ निन्दा होएत, दंड भेटत। विधाताक एहन चंठ सनक काज सँ हृदय फाटि रहलए। विद्यापति कहै छथि जे आशाक अवसान नइँ होइए।

[42]

प्रथम समागम के नहि जान।
सम कए तउलल पेम परान॥

कसल कसउटी न भेल मलान।
बिनु हुतवह भेल बारह बान॥

कि पुछ अगे सखि! कि कहिबो आन।
बुझए न पारल हरिक गेआन॥

बिकनए गेलिहुँ रतन अमोल।
चिन्हिकहु बनिकें घटाओल मोल॥

सुलभ भेल सखि न रहए भार।
काच कनक लए गाँथ गमार॥

भनइ विद्यापति असमय बानि।
लाभ लए गेलाहु मुलहु भेल हानि॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-251)

शब्दार्थ : *सम—बराबर, मलान—मलिन, हुतवह—आगि, बारह बान—बारह गुणा बेसी (कांति), बिकनए—बेचए, बनिकें—बनिया, भार—महत्त्व।*

पाठ-अर्थ : पहिल समागम मे प्रेम आ प्राणक बराबरीक मिलन अद्‌भुत होइए। ई कसौटी पर कसने मलिन नइँ होइए आ बिना आगि मे तपओने बारह गुना कांतिमय होइए।
हे सखि, हम आर की कहब। हमरा तँ प्रियक ज्ञान किछु बुझहि मे नइँ आएल। हम तँ अपन अमोल रत्न बेचि गेलहुँ मुदा चिन्हार बनिया आर मोल घटाइए देलक।
(साँच बात छै) सुलभ भेला पर वस्तुक महत्त्व कम भ' जाइ छै। एहने मे गमार सोना संगे काँच गाँथि दैए।
विद्यापति कहै छथि जे ई तँ अनहोनी भ' गेल। लाभक आसा छल, घाटा लागि गेल।

[43]

सपने आएल सखि मझु पिआ पासे।
तखनुक कि कहब हृदय हुलासे॥

न देखिअ धनु गुन न देखु सन्धाने।
चउदिस परए कुसुमसर बाने॥

बाँक विलोचन बिगसित थोरा।
चान्द उगल जनि समुद्र हिलोरा॥

उठलि चेहाए आलिंगन बेरी।
रहलि लजाए सून सेज हेरी॥

भनइ विद्यापति सुनह सपने।
जत देखलह तत पुरतौह मदने॥

(रा.त./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-40)

शब्दार्थ : *हुलास—आनन्द, धनु—धनुष, सन्धाने—निशाना, कुसुमसर—फूलक बाण*

पाठ-अर्थ : सपना मे मिलन योजना।
सपना देखल जे पहु संग मे छथि! से तखनुक उछाह की कहब?
ने कतहु धनुष देखाइ छल आ ने निशाना लगेनिहार। मुदा चारू दिशा सँ फूलक बाण चलि रहल छल।
कनखी देखब, विगलित हँसब, जेना समुद्रक हिलकोर मे चान उगल हो...
कि तखने बाँहि मे समेट' लगला तँ चेहा क' उठि गेलौं। निन्न टुटि गेल। जाह ई तँ सपना छल। सून सेज देखि लाजो भेल।
विद्यापति कहै छथि, हे जुबति! सपना मे जे देखलह से कामदेव पूर्ण करतहु।

[44]

सुतलि छलहुँ हम घरबा रे
गरबा मोतिहार।
राति जखन भिनुसरबा रे
पिअ आएल हमार।

कर कौसल करे कंपइते रे
हरबा उर टार।
कर पंकज उर थपइत रे
मुख चन्द निहार।

केहनि अभागलि भागलि रे
बैरिनि मोर निन्द।
भल कए नहि देखि पाओल रे
गुनमय गोविन्द।

विद्यापति कवि गाओल रे
धनि मन धरु धीर।
समय पाए तरुवर फर रे
कत सीचहु नीर।

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-280)

पाठ-अर्थ : सपना मे मिलन-योजना...
घर मे सुतलि रही। गरदनि मे मोतीक हार छल। भोरहरिया मे पिआ अयलाह। बड़ युक्ति सँ, कँपैत हाथें हार केँ छाती पर सँ टारलनि आ हमर मुँह देखैत रहला।
हमर अभाग, जे बैरिनि निन्न उड़ि गेल। ठीक सँ देखिओ नइँ सकलौं जे पहु (गुनमय गोविन्द) केहन छलाह।
विद्यापति गओलनि जे हे धनि, स्थिर रहू! वृक्ष समय पर फरै छै, अहाँ भले नित्य जल पटबैत रहू।

[45]

कुञ्ज भवन सओ निकसलि हे
रोकल गिरिधारी।
एकहि नगर बसु माधव हे
जनु करु बटमारी।

छाड़ कान्ह मोर आंचर हे
फाटत नव सारी।
अपजस होएत जगत भरि हे
जनि करिअ उघारी।

संगक सखि अगुआइलि हे
हमे एकसरि नारी।
दामिनि आए तुलाइलि हे
एक राति अन्धारी।

कवि विद्यापति गाओल हे
सुनु गुनमन्ति नारि।
हरिक संग किछु डर नहि हे
तोंहे परम गमारी।

(ग्रि./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-187)

शब्दार्थ : *बटमारी—बाट मे बदमासी, दामिनि—बिजलौका*

पाठ-अर्थ : कुंज भवन सँ बाहर होइते गिरधारी बाट छेकि लेलनि। (ई तँ अधलाह बात)। एक्कहि नगर मे बसै छी हम-अहाँ, बटमारी जुनि करू। (हे देखू) हमर आँचर छोड़ि दिय। नवका साड़ी छै, फाटि जाएत। जगत भरि मे अपजस से होएत। हे एना उघार नइँ करू।
(हे देखू) संगक सखी सब आगू बढ़ि गेली। हम एकसरि भ' गेल छी। बिजलौका सेहो छिटकै छै आ राति बेस अन्हार अछि।
विद्यापति गबै छथि जे गिरधारी संग मे कोनो भय नहि। अहाँ गुनमन्ती नारी भ'क' गमार जकाँ किए करै छी ?

[46]

अरुन किरन किछु अम्बर देल।
दीपक सिखा मलिन भए गेल॥

हठ तेज माधव जएबा देह।
राखए चाहिअ गुपुत सिनेह॥

दुरजस जाएत परिजन कान।
सगर चतुरपन होएत मलान॥

भमर कुसुम रमि न रह अगोरि।
केओ नहि बेकत करए निअ चोरि॥

अपनेञो धन हे धनिक धर गोए।
परक रतन परगट कर कोए॥

फाब चोरि जञो चेतन चोर।
जागि जाएत पुर परिजन मोर॥

भनइ विद्यापति सखि कह सार।
से जीवन जे पर उपकार॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-79)

शब्दार्थ : *गोए—नुका क', अगोरि—पहरा, दुरजस—अपयश, चतुरपन—चालाकी, बेकत—व्यक्त, परगट—प्रगट/उघार।*

पाठ-अर्थ : आकाश मे भोरुक किरण पसरि रहल अछि। दीपक शिखा मंद भ' गेल। हठ छोड़ू आ जाए दिय। सिनेह के गुप्ते राख'क चाही। परिजनक कान मे पड़तनि (जे एखन तक सुतले छी) तँ भारी अपयश होएत। सब टा बुधियारी घोसरि जाएत। (देखू) भमरा फूल पर घुमैत रहैए, फूल केँ अगोरि क' बैसल नइँ रहैए। फेर के एहन होएत जे अपन चोरी अपने उजागर क' देत।
धनिक अपन धन नुकाक' रखैए किएक। अनकर धन प्रगट करक लेल लोक तैयारे रहैए।
जँ चोर बुधियार भेल तँ चोरि फबि जाइ छै। (हम सब एहन बुधियार चोर नइँ छी, से उठू) परिवारक लोक सब जागि रहल छथि।
विद्यापति कहै छथि जे जीवनक सार थिक, पर-उपकार।

[47]

पावक शिखा निच न धाबए
ऊँच न जाए जलधारा।
तत से पए अबस करए
जकर जे बेबहारा॥

माधब गरुअ आरति तोर।
निञ मने जदि आगु न गुनह
कइलि रे बिथा मोरि॥

कत न वासर पलटि आबिह
कति न होइह राति।
पर दोस दए तिरिबध लेअ
कञोन से पुरुस जाति॥

ओ नवि नागरि निसा सगरि
सुरत अबधि गेला।
अरुन उदय नाह निरदय
उपसम नहि भेला॥

(रा.पु.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-65)

शब्दार्थ : *पावक—अग्नि, निच—नीचाँ, गरुअ—पैघ/भारी, आरति—आसक्ति/पीड़ा, विथा—वृथा/बेकार, उपसम—वासना/निंदस निवृत्ति, वासर—दिन।*

पाठ-अर्थ : धधरा नीचाँ मुँहें आ जलधार उपर मुँहें नइँ जाइए। जकर जे व्यवहार उचित छै से सैह करैए।
अहाँक आसक्ति बेस पैघ भेल जाइछ। अपने मोन मे जखन एकर आगाँ विचार नइँ करब तँ हमर सब टा बुझओनाइ-सुझओनाइ बेकार।
दिन बेर-बेर हेतै, राति बेर-बेर अओतै। मुदा अहाँ लेल जेना से हेबे नइँ करतै। एहना मे अहाँ हमरो कलंकित करै छी जे वध समान अछि। पुरुषक ई केहन प्रकार भेल।
राति भरि तँ अपना मोनक करबे केलौं, आब सूर्योदय भ' गेल तैयो अहाँक अलस-वासना नहि गेल। (ई नीक बात नइँ।)

[48]

आरति आपु परार नहि चिन्हह
घरह कत कुबानि।
अपन रमनि रागे सन्तापह
परक पेअसि आनि॥

कान्हा, तजे बड़ लोक निशंक।
हँसि हँसि सेहे करम करसि
जेहो कुल-कलंक॥

जाहि जाहि तोहि गुरु निबारए
ताहि तोरा निरबंध।
आँखि देखि जे काज न करए
ताहि पर बोल अंध॥

तथिहु चिर समागम माँगह
एत बड़ तोर लोभ।
परक भुखन परक वैभव
कतखन दहु सोभ॥

दूतीक वचने कान्ह लजाएल
कवि विद्यापति भाने
जे भेल से भेल जेहि तेहि गेल
आबे करु अवधाने॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-120)

शब्दार्थ : *आरति—आसक्ति, आपु—अपन, परार—आन, राग—तामस, कुबानि—अधलाह चालि, पेअसि—प्रेयसी, निशंक—अगरजीत/मनमौजी, निबारए—मना करए, निरबंध—आग्रह, तथिहु—तैयो, भुखन—गहना, अवधान—विचार/समाधान।*

पाठ-अर्थ : आसक्ति वश अपन-आन नइँ चीन्है छह, अधलाह चालि चलै छह। अपन प्रेयसी केँ संताप दै छह, अनकर प्रेयसी केर कामना करै छह। तों बड़ अगरजीत छह। जाहि सँ कुल-कलंक हो तेहन काज तों हँसि-हँसि क' करै छह। गुरुजन जाहि काज केँ मना करै छथि तों सैह करक लेल उताहुल होइ छह। बुझि-सुझि क' जे काज नइँ करए तकरे लोक आन्हर कहै छै। तैयो तोरा हरदम समागम चाही, एतेक पैघ लोभ। (ई नइँ जनै छह जे) अनकर आभूषण, अनकर वैभव पर लोभ केनाइ कते काल शोभा देतह। एतेक सुनि, पुरुष केँ लाज भेलै। विद्यापति कहै छथि जे, जे भेल से भेल आबहु सचेत होइ, अधलाह सँ बचू।

[49]

माधव ई नहि उचित विचारे।
जकर एहन धनि काम कला सनि
से किए करु बेभिचारे॥

प्रानहु चाहि अधिक कए मानए
हृदयक हार समाने।
कोन परि जुगति आन के ताकब
की थिक हुनक गेआने॥

कृपिन पुरुष के केओ नहि निक कह
जग भरि कर उपहासे।
निज धन अछैते नहि उपभोगब
केवल परहिक आसे॥

भनइ विद्यापति सुनु मधुरापति
ई थिक अनुचित काजे।
माँगि लाएब बित से जदि होअ नित
अपन करब कोन काजे॥

(ग्रि./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-522)

शब्दार्थ : *कोन परि जुगति—कोन कारण सँ, बित—वित्त/धन, गेआने—ज्ञान*

पाठ-अर्थ : जकर अपने स्त्री काम-कला सन हो से व्याभिचार करए से अनुचित विचार भेल।
जे प्राणहु सँ बढ़ि क' मानए, हृदय मे हार जकाँ धारण केने रहए तकरा छोड़ि अनका लेल उपाय करैत रहब से ई केहन ज्ञान भेल?
अपन धन अछैत आनक आस मे रहब कृपिन पुरुषक काज भेल, जकरा केओ नीक नइँ कहैए आ सबठाम ओकर उपहास होइ छै।
विद्यापति कहै छथि जे माँगल धनक उपयोग जँ सब दिनक आदति हो तँ ई घोर अनुचित भेल। फेर अपना धनक कोन उपयोगिता होयत?

[50]

माधव! जानल न जीउति राही।
जतबा जकर लेलें छले सुन्दरि
से सबे सोम्पलक ताही॥

सरदक ससधर मुखरुचि सोम्पलक
हरिन के लोचन लीला।
केस पास लए चमरिकेँ सोम्पलक
पाए मनोभव पीला॥

दसन दसा दालिमकेँ सोम्पलक
मधुरि अधर रुचि देली।
देह दसा सउदामिनि सोम्पलक
काजर सनि सखि भेली॥

भञुहेरि भंग अनंग चाप दिहु
कोकिलकेँ दिहु बानी।
केवल देह नेह अछ लओले
एतबा अएलहुँ जानी॥

भनइ विद्यापति सुन वरजउवति
चिते जनु झाँखह आने।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रमाने॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-217)

शब्दार्थ : *पीला—पीड़ा, दालिमकें—दाड़िम, सउदामिनि—बिजुरी, चाप—धनुष, दसन दसा—दाँतक कांति।*

पाठ-अर्थ : आब ओ जीवित नइँ रहती से जानिक' सुन्दरी जकर जे नेने रहथि से सब घुरा क' द' देलनि। शरद-चंद्र केँ मुँहक शोभा द' देलनि। हिरणी केँ आँखिक लीला देलनि। चमर केँ केश-पाश द' देलनि। मनक पीड़ा टा संग छनि। दाँतक शोभा दाड़िम केँ देलनि, ठोरक रंग मधुरि फूल केँ द' देलनि। देहक चमकी बिजुरी केँ सौंपलनि। अपने काजर सन भ' गेली।
भौंहुक रूप कामदेवक धनुष केँ द' देलनि। कोकिला केँ अपन वाणी सौंपलनि। मात्र देह-नेह ल'क' आबि गेली।

[51]

आएल उनमद समय वसंत। दाहन मदन निकारुन कंत।

रितुराज आज विराज हे सखि नागरी-जन-वन्दिते
नव रंग नव दल देखि उपनव सहज सोभित कुसुमिते।

कुसुमित कानन कोकिल नाद। मुनिहुक मानस उपजु बिसाद।

अति मत्त मधुकर मधुर रव कर मालती मधु संचिते
समय कन्त उदन्त नहि किछु हमहि विधिवस वंचिते।

वंचित नागर सेहे संसार। एहि रितुपति जे न कर विहार।

अति हार भार मनोज मारए चन्द रवि सन भान ए
पुरुब पाप संताप जत हो मन मनोमथ जान ए।

जारए मनसिज मार सर साधि। चान्दने देह चौगुन हो धाधि।

सब धाधि आधि बेआधि जाएत करिअ धैरज कामिनी
सुपहु मन्दिर तुरित आओत सुफल जाएत जामिनी।

जामिनि सुफल जाइति अवसान। धैरज धरु विद्यापति भान।

(लो.कं./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-334)

शब्दार्थ : *निकारुन—निराकरुण/कठोर, विसाद—विकृति, रव—ध्वनि, उदन्त—उदेस/खोज-खबरि, धाधि—ज्वाला।*

पाठ-अर्थ : उन्मत करयवला वसंत ऋतु आएल। एहन समय मे प्रियतम कठोर भेल छथि। समस्त नगरक लोक ऋतुराजक वन्दना करैए। नव रंग, नव पात आ नव फूल सँ उपवन शोभायमान अछि।
उपवन मे कोइलीक मधुर नाद सँ मुनि पर्यंतक हृदय मे विकृति आबि जाइ छनि। मातल भौंरा मधुर स्वर मे गुंजन करैए, मालतीक संचित मधुक पान करैए। एहना मे प्रियक कोनो उदेस नइँ, से हम तँ एहि आनन्द सँ वंचित छी।
वसंत के आनन्द जे नइँ ल' सकल से बड़ पैघ चीज सँ वंचित भेल। मोनक उत्साह मरि जाइए। चानक इजोत सूर्यक ताप सन लगैए, मोन मे अगबे संतापे-संताप अछि।
विरह वाण सँ मारलि केँ चानन सेहो ज्वाला सन कष्टकारी होइ छै।
विद्यापति कहै छथि जे सुपहुक कर्तव्य जे एहि समय मे घर आबथु। तखन सब जलन-ज्वाला, आधि-व्याधि समाप्त भ' जाएत। से धैर्य रखने रहू।

[52]

तोहर हृदय कुलिस कठिन
वचन अमिञ धार
पहिलहि नहि बूझए पारल
कपट के बेबहार।

जत जत मन छल मनोरथ
विपरीत सबे भेल
आँखि देखइते कुपथ घसलिहु
आरति गौरव गेल।

साजनि हमे कि बोलब आओ
आगु गुनि जे काज न करिअ
पाछे हो मचताओ।

उत्तिम जन बेबथा छाड़ए
निञ बेथा चूक
कइसे कए से मूँह देखाबए
पइसि पतारल कूप।

अब हमे तुअ सिनेह जानल
कञोन उपमा देब
ए हरि चोंचक खोन्धा अइसन
किछु न बानि-षेब।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-34)

शब्दार्थ : *कुलिस—बज्र, अमिञ—अमृत, आरति—आसक्ति/आर्ति, बेबधा—व्यवस्था, बेथा—व्यथा, पतारल—पातालगामी, बानि-षेब—तानी-भरनी, खोन्धा—खोंता*

पाठ-अर्थ : तोहर वचन मे अमृत आ हृदय मे बज्रक कठोरता छह। पहिने एहि कपट-व्यवहार केँ नहि बुझि सकलौं। सब टा मनोरथ विपरीते भेल। आँखि रहितो आन्हर जकाँ अधलाह बाट धेलहुँ आ हमर गौरव बिला गेल। आब हम की बाजू। पहिने सोचि क' जे काज नइँ करैए तकरा बाद मे पश्चाताप होइते छै। उत्तम जन जँ व्यव्यस्थाक त्याग करए आ अपना व्यथाक चलते भूल-चूक हो तँ ओकरा लेल ठीक जे ककरो मुँह नहि देखा क' पातालगामी कूप मे धंसि जाए। आब सब किछु जनलाक बाद तोरा सिनेहक कोन उपमा देब? किछु-किछु ई चोंचाक खोंता सन अछि जकरा मे कोनो तानी-भरनी नइँ होइ छै।

[53]

बड़ि बड़ाइ सबे नहि पाबए
विधि निहारए जाहि।
अपन वचन जे परिपालए
से बड़ सबहु चाहि॥

साजनि! सुजन जन सिनेह।
कि दिअ अजर कनक उपाम
कि दिअ पसान रेह॥

ओ जदि अनल आनि पजारिअ
तइओ न होअ मलान।
ई जदि असि कसि कए काटिअ
तइओ न तेजए ठान॥

गरल आनि सुधारसें सिञ्चिअ
सीतल होअए न पार।
जइओ सुधानिधि अधिक कुपित
तइओ न बरिस खार॥

भन विद्यापति सुन रमापति
सकल गुनक निधान।
अपन वेदन ताहि निवेदिअ
जे पर वेदन जान॥

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-492)

शब्दार्थ : *अजर—जे आगि मे नहि जरए, कनक—सोना, उपाम—उपमा, पसान—पाथर, रेख—रेखा, अनल—आगि, असि—तरूआरि, ठान—निश्चय, गरल—विष, सुधारस—अमृत, चानक इजोत।*

पाठ-अर्थ : जकरा पर ईश्वरक कृपा होइ छै सैह पैघ होइए आ ओकरे सब ठाम बड़ाइ होइ छै। सिनेह ओकरे संगे करक चाही जे सुजन हो। ओकर उपमा अजर कनक सँ हो नइँ तँ पाथर परहक रेखा सँ। ओकरा (कनक केँ) आगि मे डाहब तैयो ओ मलान नइँ हैत। एकरा (पाथर-रेख केँ) कसि क' तरुआरि सँ काटब तैयो ओ अपन ठाम नइँ छोड़त। विष केँ चानक इजोत सँ नहा देब तैयो विष शीतल नहि होएत। चान कतबो कुपित किए ने होथि, आगिक वर्षा नइँ क' सकै छथि। विद्यापति कहै छथि जे अपन दुख ओकरे कह'क चाही जकरा मे अनकर दुख जनबाक क्षमता होइ।

[54]

माधव! तोहें जनु जाह विदेसे।
हमरहु रंग रभस लए जएबह
लएबह कओन सन्देसे॥

जबहि गमन करु होइति दोसरि मति
बिसरि जाएब पहु मोरा।
हिरा मनि मानिक एकओ न माँगब
फेरि माँगब पहु तोरा॥

जखन गमन करु नयन नीर भरु
देखिओ न भेल पहु तोरा।
एकहि नगर बसि पहु जओ परबस
कइसे पुरत मन मोरा॥

पहु संग कामिनि बहुत सोहागिनि
चान्द निकट जइसे तारा।
भनइ विद्यापति सुनु वरजउवति
अपन हृदय धरु सारा॥

(ग्रि./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-562)

शब्दार्थ : *रंग-रभस—कौतुक, सारा—धैर्य, हिरा—हीरा, मनि—मणि*

पाठ-अर्थ : हे पिया! तों विदेश नहि जाह। विदेश सँ तों सनेस की अनबह, उनटे हमर जे जीबाक उत्साह अछि सेहो तोरे संगे चलि जाएत।
जखन विदा होएबह तखने तोहर मोन बदलि जेतह आ तों हमरा बिसरि जेबह। हमरा तोरा सँ हीरा, मणि, माणिक्य किछुओ नहि चाही। हमरा मात्र हमर पहु चाही।
जखन विदा भ' गेलह तँ आँखि मे नोर भरल छल तें तोरा जाइत देखबो नइँ केलियह। एक्के ठाम रहितो, पहु केना परदेस जेबाक इच्छाक अधीन भ' गेलाह! आब हमर कोन मनोरथ पूरा होएत।
कामिनी ओएह भाग्यशाली जकर पहु ओकरा संग हो। विद्यापति कहैत छथि जे हे वर युवती, अपन हृदय केँ थिर करह।

[55]

दखिन पवन बह मन्द।
माँजरि झर मकरन्द॥
तखने हलब मनमारि।
लोचन हलब निबारि॥

पिअ हे!
जदि तोहें जाएब विदेस।
धरब हमर उपदेस॥

मधुकर जदि कर राब।
जदि पिक पंचम गाब॥
तखने करब अनुमान।
मूँदि रहब बरु कान॥

पर तिरि मानब तीति।
धैरजें मनोभव जीति॥
राखब अपन परान।
हमहि करब जलदान॥

सुकवि भनथि कण्ठहार।
के सह काम परहार॥
नृप सिवसिंह रस जान।
लखिमा देइ रमान॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-228)

शब्दार्थ : *माँजरि—मज्जर, मकरन्द—पराग, हलब—राखब, निबारि—मना केनाइ, तिरि—स्त्री, परहार—उपाय*

पाठ-अर्थ : मंद-मंद मलयानिल बहत, मज्जर सँ परागकण झरत, मुदा हम अपन मोन केँ मारि लेब। नयनक केबाड़ बंद क' लेब।
पिया हे, जँ तों विदेश जेबे करबह तँ हमर एक टा बात मानह। (तोरा ओत' जे) भमरा गुंजन करह, कोइली पंचम तान अलापह तखन तों हमर (दशा के) अनुमान लगबिह आ अपन दुनू कान मुनि लीह'।
पर-स्त्री केँ तीत क' बुझिह। धैर्य सँ मनक चंचलता केँ जीतल जा सकै छै। अपन खेयाल रखिह' (जाहि सँ) हमरा तिलांजलि द' सकब। सुकविक कहनाम जे कामनाक प्रहार केँ सहनाइ बड़ कठिन।

[56]

सरसिज विनु सर,
सर विनु सरसिज,
की सरसिज विनु सूरे।
जउवन विनु तन,
तन विनु जउवन,
की जउवन पिअ दूरे॥

सखि हे!
मोर बड़ दइव विरोधी।
मदन वेदन बड़,
पिआ मोर बोलछड़,
अबहु देहे परबोधी॥

चउदिस भमर भम,
कुसुमे कुसुमे रम,
नीरसि माँजरि पीबइ।
मन्द पवन बह,
पिक कुहुकुहु कह,
सुनि विरहिनि कइसे जीबइ॥

सिनेह अछल जत,
हमे भेल न टुटत,
बड़ बोल जत बसे थीरे।
अइसन कए बोलदहु,
निज सिम तेजि कहु,
उछल पयोनिधि नीरे॥

भनइ विद्यापति,
अरे रे कमलमुखि,

गुनगाहक पिआ तोरा।
राजा सिवसिंह
रूपनराएन
सहजे एको नहि भोरा॥

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-558)

शब्दार्थ : *सरसिज—कमल, सर—तालाब, सूरे—सूर्य, बोलछड़—बातचीत छोड़ि देनिहार/वचन सँ फिरनिहार/ठक, सिम—सीमा, भोरा—अज्ञानी।*

पाठ-अर्थ : कमल के बिना तलाब की, तलाब नइँ तँ कमल की आ सूर्य नइँ तँ कमल की। (तहिना) यौवन नहि तँ देह की, देह नइँ तँ यौवन की आ फेर ओ यौवन की जखन पिया संग नहि।

ई दैब हमर बड़का दुश्मन। प्रवल कामना सँ भरल हमर मोन आ अपना वचन सँ पाछु हटि गेनिहार हमर पहु! विधाता आबहु तँ हुनका बुद्धि देथुन।

चारूभर भमरा गुंजन करैए, फूले-फूले भरमैए, मज्जरक सब टा रस पीबैए, मंद-मंद बसात सिहकै छै, पपिहा कुहु-कुहु करै छै...एहना मे हमरा सन विरहिनी कोना क' जीअत।

स्नेह तँ बड़ छल। हम आश्वस्त रही जे ओ कखनो नइँ टूटत। मुदा के जनै छल जे से सब कहक लेल रहए। के जनै छल जे समुद्र अपन (वचन केँ) सीमा तोड़ि देत। विद्यापति कहै छथि जे हे कमलमुखि! तोहर पिआ गुनगाहक छथि, अज्ञानी नहि।

[57]

हम नहि आजु रहब एहि आँगन
जञो बूढ़ होयत जमाए।

एक त बैरी भेल वीधि विधाता
दोसर धिआ केर बाप
तेसर बैरी भैल नारद बाभन
बुढ़ वर अनलक जाए।

पहिलुक बाजन डामरू तोड़ब
दोसरे तोड़ब रूण्डमाल
बरद हाँकि बरिआत बैलाएब
धिआ लए जाएब पड़ाए।

धोती लोटा पतरा पोथी
सेहो सब लेबन्हि छिनाए
जञो किछु बजता नारद बाभन
दाढ़ी धए देबन्हि घिसिआए।

भनहि विद्यापति सुनु हे मनाइनि
दिढ़ करू अपन गेआन
सुभ सुभ क सिरी गउरी बिआहिअ
गौरी हर एक समान।

(लो.कं./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-35)

शब्दार्थ : *दिढ़—दृढ़।*

पाठ-अर्थ : बेटीक लेल बेमेल वर केँ आनल गेल तँ माए तमसा क' कहै छथि जे आब हम एहि आँगन मे नइँ रहब जँ ई बुढ़ हमर जमाए होएत। पहिल बैरी विधाता दोसर बैरी धिआ के बाप जे गौरी लेल उचित वर नइँ जोहलक। तेसर

बैरी ई घटक (नारद) छथि जे बुढ़बा केँ हमर जमाए बना क' ल' अनलनि। हम बुढ़बाक डमरू फोड़बै, तखन रूण्डमाल तोड़बै। फेर वरद केँ हाँकि क' भगाएब, बरिआती केँ बैलाएब आ बेटी केँ ल'क' कतहु पड़ा जाएब।
घटक (नारद) केँ धोती, लोटा, पोथी-पतरा सब टा छिनबा लेबनि। जँ किछु बजता तँ दाढ़ी ध'क' घिसिएबनि।
विद्यापति कहै छथि जे हे धिआ के माइ (मनाइनि) कने मोन केँ दृढ़ करू आ शुभ-शुभ गौरीक विवाह होब दियउ किएक तँ गौरी आ हर एक भ' चुकल छथि।

[58]

अमा कि न गमाउति गोरी।
सकल सम्पति मोञे जोहि अएलाहुँ
पाओल भसम झोरी॥

न घर संवर न पिठि अम्बर
न मिल पैंच उधारे।
तनय बापुर भूखे बेआकुल
कि मञे देब अहारे॥

वासुकि जिउत पवन पिउत
हरे जिउब बिख खाई।
सेवक सामि दुहु भल मिलल
हमर कञोन उपाई॥

पेट पटकल गाल चोटकल
पाकल भञुहेरि गोँछी।
ताहि बुढ़ा हाथ ई बिहि देलहु
तञे मोञे पापिनि धोँछी॥

माए न सोचल बाप न खोजल
खोजल दैव अपने।
बिधिक लिखल मेटि न पाबए
झाँखिअ मनहि मने॥

भन विद्यापति सुन पारबति
एहो त्रिभुवन देवा।
जगत इसर सामि तोहि मिलु
कर जोरि करु सेवा॥

(भा./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-8)

शब्दार्थ : संवर—संबल, अम्बर—कपड़ा, बापुर—बेचारा, गोंछी—गुच्छा/झब्बा।

पाठ-अर्थ : गौरी सोचै छथि जे हमर दिन केना बीतत? घर मे कोनो संबल नइँ, देह पर वस्त्र नइँ, कतहु सँ पैंच-उधार भेट' बला सेहो नइँ। बच्चा भुखे लहालौट भेल... हर अपने भांग-धतुर खेता, हिनक सेवक वासुकी हवा पीबिक' रहत, हम की करू? हमर स्वामी के पेट पचकल, गाल चोकटल, एते बुढ़ जे भौंह पर्यंत पाकल, तकरा संग हमरा लगा देल गेल...माए नइँ सोचलक, बाप नीक वर नइँ तकलक। बस विधाता एहन जोड़ी लगा देलनि आ हम झखै छी। विद्यापति कहै छथि जे ई जे स्वामी छथि ने, से ईश्वर छथि। हिनकर सेवा करू।

[59]

गौरा तोर अंगना।
बड़ अजगुत देखल तोर अंगना।

एकदिस बाघ-सिंह करे हुलना
दोसर बलद छौह सेहो बओना।

कार्तिक गनपति दुइ चेंगना
एकचढ़े मोर पर एक मूसलदना।

पैंच उधार माँग गेलौं अंगना
संपतिक मध देखल एक भंगघोटना।

खेती न पथारी करे भाँग अपना
जगतक दानी थिक तीन भुवना।

भनहि विद्यापति सुनु उगना
दरिद्र हरन करू धैल सरना।

(लो.कं./मो.भा., वि.शि., प.सं.-28)

शब्दार्थ : हुलना—हुलल फिरैए, बलद—बरद, चेंगना—बालक, मध—मध्य

पाठ-अर्थ : ई पद पड़ोसिनक उक्ति सन लगैए जे पैंच माँगय गौराक आँगन गेली। ओ कहै छथि जे हे गौरा, तोरा आँगन बड़ अजगुत देखलौं। (जेम्हर-तेम्हर सँ) बाघ-सिंह हुलकै छल आ एक टा बरद छह सेहो भुट्ट।
दू टा चेंगना (बेटा) छह, कार्तिक मोर पर चढ़ै छह आ गनेस मूस पर।
पैंच माँगय गेल रही मुदा संपत्तिक नाम पर एक टा भंगघोटना टा देखाएल।
हँ! (कत' सँ रहत) खेती-पथारी छहे नइँ। हँ (बिना उपजौले) भाँग टा अपन छह ओकरे भोजन करै छथुन आ (भाँगक सेवन उपरांत) अपना केँ तीनू भुवनक स्वामी बूझै छथुन।
विद्यापति कहै छथि जे हे उगना (विद्यापतिक खबास मुदा महादेवक प्रतिरूप मानल जाइत) अहाँक पएर पकड़ै छी, हमर गरीबीक हरण करू।

[60]

आगे माइ जोगिआ हमर जगत सुखदायक
दुख ककरो नहि देथि
एहि जोगिआ के भाँग पिआ कए
धतुर खोआ मति लेथि।

आगे माइ कातिक गनपति दुइजन बालक
जग भरि के नहि जान
तनिका नहि किछु अभरन थिकइन
रति एक सोन नहि कान।

आगे माइ सोने-रूपे छारथि अनका पूत के
गरा देथि मनिमय माल
अपना पूत लए किछु नहि जुड़इन
अनका लए जंजाल।

आगे माइ भनइ विद्यापति सुनिअ गौरादेवि
दिढ़ करू अपन गेआन
ई हर थिका त्रिभुवन पति दानी
जग भरि के नहि जान।

(लो.कं./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-648)

शब्दार्थ : अभरन—वस्त्र, रति—रत्ती, जंजाल—फिरीसान

पाठ-अर्थ : (ई पद संभवतः गौराक गरीबी आ हरक भेषधारी भिखारिक उलहनक प्रत्युत्तर छी।)
हमर जोगिया सबके सुखे दैत छथि। ओ ककरो दुख देब'बला नइँ। हिनका तँ (लोक सब) भाँग-धथुर खुआ क' मति-हरण क' देलकए।
सब जनैए जे कार्तिक-गनपति जे दुनू बालक छथि तिनका ने ढंगक पहिरन छनि। एत' तक जे कान मे एक रत्ती सोना तक नहि। मुदा अनका पूत केँ सोना, चानी, मणि-रत्नक माला दै छथि। बस अपना पूत लेल किछु नइँ जुड़ै छनि।
विद्यापति कहै छथिन गौरा देवि केँ जे अपना केँ सम्हारथि, मोन केँ स्थिर क'क' देखथु तँ हर त्रिभुवन पति दानी लगथिन। संसार मे सब केँ ई बात बुझल छै।

[61]

आजु नाथ एक बरत महासुख लाबिअ हे।
तोहें सिव धरु नट बेस कि डमरु बजाबिअ हे॥

तोहें कहिअ गउरि नाचए हमे कोना नाचब हे।
चारि सोच मोहि होए कओन बिधि बाँचब हे॥

अमिअ चुबिअ भुजि खसत बघम्बरे छाएत हे।
होएत बघम्बर बाघ बसहा पड़ाएत हे॥

सिर सओ ससरत साप दहोदिस जाएत हे।
कातिक पोसल मजूर सेहओ धए खाएत हे॥

जटा सओ छिलकत गांग भूमि भरि जाएब हे।
होएत सहसमुख धार समेटि न पाएब हे॥

रुण्डमाल टुटि खसत मसानी जागत हे।
तोहें गउरि जएबह पड़ाए नाच के देखत हे॥

विद्यापति कवि गाओल गाबि सुनाओल हे।
राखल गउरिक मान कि चारू बचाओल हे॥

(लो.कं./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-32)

पाठ-अर्थ : (एहि पद केँ कौतुक जकाँ देख'क चाही। पति-पत्नी एक दोसरक टांग घीचैक मनोभाव मे अछि। पत्नी, पति सँ नाच करबाब' चाहैए, पति नाच सँ बच'क लेल बहन्ना सब ठाढ़ करैए।)
(प्रस्ताव) हे नाथ! एक टा विचार मोन मे आएल जे अहाँ नटवेश धरू आ डमरू बजाउ। ई महासुखकारी होएत।
(प्रस्ताव के उत्तर) तों कहै छह गौरी तँ हम नाचब। मुदा केना नाचब? चारि सोच होइए ताहि सँ केना बाँचब?

(नाचब तँ डोलब, तँ) चान महक अमृत चुबि क' बघम्बर पर खसत, ओ बाघ भ' जाएत आ बसहा केँ खा जाएत।

(दोसर) माथा पर जे साँप सब अछि से ससरिक' दसो दिशा मे जाएत। कार्तिक के पोसलाहा मयूर सब केँ खा जाएत।

(तेसर) गंगा उछलि जेती। पानि सौंसे धरती पर पसरि जैत। धार के हजारो मुँह हेतै, समेटल पार नइँ लागत।

(अंत मे) रूण्डमाल टूटि क' खसत, मसानी जागत (भयंकर दृश्य हैत) तों गौरी डेरा क' पड़ेबह तँ नाच के देखत? (तँ किए नाचब)

विद्यापति गाबि क' कहै छथि जे गौरीक मानो रहलनि (परिनाम देखेबाक जे रूप छलै सेहो तँ नाचे ने) आ चारू बंचियो गेलै।

[62]

बुढ़हु वयस हर बेसन न छड़ले
की भेल बसह धबाइ।
भल भेल हर जे हाड़ न टूटले
के जान की होइत आइ।

बसह पड़ाएल के जान कतए गेल
हाड़ माल की भेल?
फुटि गेल डमरू भसम छिड़िआएल
अपथे सम्पति दुर गेल।

हमर कहल सिव तोहहि न मानह
अपना हठ बेबहारे
सगरो जगत सबहु कां सुनिअ
घरनिक बोल नहि टारे।

भनइ विद्यापति सुनह महेसर
ई जानि अएलाहु तुअ पासे
तोरा लग सिव बिधिन विनासब
आनक कोन तरासे।

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-30)

शब्दार्थ : बेसन—व्यसन, हर—महादेव, हाड़—हड्डी, हाड़-माल—हड्डीक माला, अपथे—व्यर्थ, तरासे—भरोस, घरनि—स्त्री/पत्नी

पाठ-अर्थ : (पद घटनाक बादक प्रतिक्रिया छी। पति बसहा पर चढ़ल अबै छला। ओकरा दौड़ा देलथिन। असंतुलित भ'क' खसि पड़ला। पत्नी दौड़ि क' एलखिन) बुढ़ारियो मे व्यसन (भाँगक सेवन) नइँ छोड़ल। बसहा केँ दौड़ा देलहक। रक्ष रहल जे कोनो हड्डी-गुड्डी नइँ टुटल नइँ तँ ने जानि की होइत? बसहा कत'-कहाँ पड़ेलह आ रूण्डमाल की भेल? डमरूओ फूटल आ भस्म से छिड़िया गेलह। (इएह तँ सम्पति छलह सेहो) कुठाम चलि गेलह।
हमर कहल तँ तों कखनो नइँ मानबह। अपने हठ पर रहबह। संउसे संसार कहै छै आ मानै छै जे पत्नीक बात नइँ टारबाक चाही।
विद्यापति कहै छथि जे तोरा लग एने बाधा-विघ्नक विनाश होएत। आन ककरो आवश्यकता नइँ होएत। (मुदा तों तँ अपने पराभव मे छह)

[63]

बेरि बेरि अरे सिव! मोञे तोहि बोलञो
किरिसि करिअ मन लाए।
बिनु सरमे रहिअ भिखिए पए मांगिअ
गुन गउरब दुर जाए॥

निरधन जन बोलि सबे उपहासए
नहि आदर अनुकम्पा।
तोहें सिव पाओल आक धुथुर फुल
हरि पाओल फुल चम्पा॥

खटंग काटि हर, हर बन्धाबिअ
तिसुल तोड़िअ करु फारे।
बसह धुरन्धर लए हर जोतिअ
पाटिअ सुरसरि धारे॥

भनइ विद्यपति सुनह महेसर
ई जानि कएल तुअ सेवा।
एतए जे बरु होअ से बरु होअओ
ओतए सरन मोहि देबा॥

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-22)

शब्दार्थ : किरिस—कृषि, सरमे—श्रम, खटंग—लाठी सन काठक उपकरण, तिसुल—त्रिशूल

पाठ-अर्थ : (ई पद पारिवारिक विमर्श छी। मुद्दा छै आर्थिक स्थिति सँ जुड़ल)
हे सिव, तोरा हम बेर-बेर कहै जी जे मोन लगा क' खेती करह। भीख माँग' सन अधलाह काज केने गुण-गौरव दूर भ' जाइ छै।
निर्धन कहि क' सब ठाँ उपहासे टा होइए। (इएह देख) तोरा लेल आक-धथुर के फूल आ हरि के चम्पा...।
(प्रश्न आ शंका-अभावक बात भेल हेतै...)
खटंग केँ काटि क' हर बनाबह। त्रिशुल केँ तोड़ने फार बनि जेतह। बरद छहे, ओकरा ल'क' हर जोतह आ गंगाक पानि सँ पटौनी करह।
(निर्णय की भेल से तँ पता नइँ, मुदा) विद्यापति कहै छथि जे हे महेश्वर, तोहर सेवा केलिअह बदला मे तों हमरा अपना चरण मे (ओतए) शरण दैह।

[64]

गुरुजन दुरजन परिजन बारि
न गुनल लाघब कुल के गारि।
जीव कुसुम कए पूजल नेह
भरि डभकल अबे तोहर सिनेह।
आब एत होअ न मझु वास
सखि जानब जञो बड़ उपहास।
पुनु जनु आबह हमर समाज
मञे नहि रखबे आँखिक लाज।
मुनिहुँक काज पलए परमाद
हमराहुँ जनु से पल अपवाद।
सुन्दरि वचने हलल सिर झालि
नागर न सह कुगइंआ गारि।
जत अनुराग दूर सबे गेल
भीतिक पुतरी विषधर भेल।
विद्यापति कह सुनु वरनारि
पहु अवलेपिअ दोस विचारि।
राजा रुपनराएन जान
सिरी सिवासिंह लखिमा देइ रमान।

(रा.पु.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-46)

शब्दार्थ : *बारि—त्यागि, डभकल—छलकल, पलए—पड़ए, परमाद—अनवधान, झालि—डोलओनाइ, कुगंइआ—खराप गामक लोक, पुतरी—गुड़िया/कनिञा-पुतराक कनिआँ, भीतिक—देबालक, अवलेपिअ—अनादर।*

पाठ-अर्थ : गुरुजन-दुरजन परिजन केँ छोड़ल, अपन हीनता आ कुलक गारि केँ नइँ गूनल। प्राणक फूल सँ प्रेमक पूजा केलौं...आब तोहर सिनेह छलकि गेलह। आब अइठाम हमर बास नइँ होएत। सखि सब जनती तँ आर उपहास होएत। आब तों हमरा सभक बीच नइँ एबह। एलह तँ हम रोच नइँ रखबह। मुनिगण केँ सेहो अनवधान कर' पड़ै छनि। एहने अपवाद हमरो पर अछि। पहु एतबा वचन सुनि माथ झुका लेलनि। ठीक छै नागर भ'क' खराप गामक लोक नहि कहौता। जते अनुराग छल से खतम। देबाल परहक पुतरी विषधर साँप भ' गेल। विद्यापति कहै छथि जे पहुक अनादर कर' सँ पहिने दोष पर विचार करू...।

[65]

प्रेमक गुन कहइ सब कोइ
जे प्रेमे कुलवति कुलटा होइ।

जओ हम जनितहुँ प्रीति दुरंत
तओ की जइतहुँ पापक अंत।

अब सब विष सम लागइ मोइ
हरि हरि प्रीति करइ जनु कोइ।

विद्यापति कह सुन वरनारि
पानि पीबि की जाति बिचारि।

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-106)

शब्दार्थ : *कुलवति—कुलीन स्त्री, कुलटा—व्यभिचारिणी, दुरंत—जकर परिणाम अधलाह हो, अंत—निकट।*

पाठ-अर्थ : सब प्रेमक गुणगान करैए परंतु प्रेम केला पर कुलीन स्त्री (ओकरे सभक मते) कुलटा भ' जाइए।
जँ हम जनितहुँ जे प्रेमक एहन अधलाह परिणाम होइ छै तँ हम (एकरा पाप बुझि) किन्नहु निकट नइँ जइतहुँ।
आब तँ ई हमरा सब किछु विष समान लगैए। हे ईश्वर! केओ (एहि जग मे) प्रेम नहि करए।
विद्यापति कहै छथि जे जखन पानि पिबिए लेलहुँ तखन आब जाति की पुछै छी?

[66]

मोर बउरा देखल केहु कतहु जात
बसह चढ़ल विस भाँग खात।

आखि निरर मुह चुअइ लार
पथ के चलत बौरा विसम्भार।

बाट जाइते केहु हलब ठेलि
आब ओहि बउरा विनु मञे अकेलि।

हाथ डंबरू कर लौआ सांख
जोग जुगुति गिम भरल लाख।

अरगज चढ़ाए आठहु आंग
सिर सुरसरि जटा बालइ गांग।

भनइ विद्यापति सम्भुदेव
अवसर अवस सुधि हमर लेब।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-256)

शब्दार्थ : *बउरा—बताह, निरर—चढ़ल, लौआ—सजमनिक खोल सँ बनल कमंडल, सांख—शंख, जोग जुगुति मिग—गरदनि के अनेक माला, अरगज—भस्म, बिसम्भार—बेसम्हार, डंबरू—डमरू*

पाठ-अर्थ : हमर बतहा केँ केओ जाइत देखलौं। ओ बसहा पर सवार अछि आ भाँग खेने अछि।
आँखि चढ़ल छै आ मुँह सँ लेर चुबै छै। बाट चलैत बेसम्हार डगमगाइए। (डर होइए जे) केओ ओकरा ठेलि ने दै। ओकरा बिना तँ हम एसगरि भ' गेलि छी।
हाथ मे डमरू, सजमनि खोलक कमंडल आ शंख छै। गरदनि मे कतेको माला लटकौने अछि।
आठो अंग मे छाउर लेपने अछि, माथक जटा मे गंगा कलकल बहै छै।
विद्यापति कहै छथि जे हे शम्भू, अवसर अयला पर हमर पुछारि करब।

[67]

जलधि न मागए रतन भंडार
चान्द अमिञ देअ सगर संसार।

नागर जे होअ कि करत चाहि
जकरा जे रह से दे ताहि।

सजनि कि कहब अपन गेआन
पर अनुरोधे कतए रह मान।

बिनु पओले तकराहु दुर जाए
दुहु दिस पए अनुताप जनाए।

पओले अमर होए दहु कोए
काठ कठिन कुलिसहु तह होए।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-116)

शब्दार्थ : *जलधि—समुद्र, अमिञ—अमृत, चाहि—इच्छा, अनुताप—पश्चाताप, कुलिसहु—वज्र पर्यंत*

पाठ-अर्थ : समुद्र ककरहु सँ रत्न भंडार नइँ मँगैए। चान बिनु मंगले सौंसे संसार केँ अमृत दान करैए।
जे सुपुरुष (नागर) होइए से याचना नइँ करैए। जकरा देब'क होइ छै से बिनु याचना के दैए।
हम अपन बुद्धिक हाल की कहू। मंगले कतहु मान भेटै छै? एहन (माँगल) मान स्थायी नइँ होइए आ अंत मे पश्चाताप टा बाँचि जाइए।
(माँगल चीज) भेटला पर केओ अमर नइँ होइए। एहन लोक (जे माँगला पर मान देअए) काठ की, बज्रहु सँ बेसी कठोर होइए।

[68]

कालि कहल पिआञे साँझहि रे
जाएब मोञे मारुअ देस।
मोञे अभागलि नहि जानल रे
संग जइतहुँ जोगिनि भेस॥

मोर हृदय बड़ दारुन रे।
पिआ बिनु बिहरि न जाए॥

एकहि सयन सखि सूतल रे
अछल बालम निसि मोर।
न जानल कति खन तेजि गेल रे
बिछुरल चकेबा जोर॥

सून सेज हिआ सालए रे
पिआञे बिनु मरब मोञे आजि।
विनति करञो सहलोलिनि रे
मोहि देहे अगिहर साजि॥

विद्यापति कवि गाओल रे
आए मिलत पिअ तोर।
लखिमा देइ वर नागर रे
राए सिवसिंह नहि भोर॥

(रा.त./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-20)

शब्दार्थ : *मारुअ देस—मरू देश, बिहरि—फाटि, जोर—जोड़ा, अगिहर—अगियासी/चिता, भोर—मूर्ख, दारुन—कठोर, निसि—राति, सालए—कष्ट देअए, सहलोलिनि—सखी।*

पाठ-अर्थ : काल्हि साँझ मे पिआ कहलनि जे ओ मरुदेस जेताह। हमर निन्ने नइँ टूटल, नइँ तँ संगहि जैतहुँ। हमरो हृदय बड़ कठोर अछि जे पिआक वियोग मे एखन तक नइँ फाटल। एक्कहि सेज पर सुतल रही। पिया भेर भेल सुतल रहथि। कखन ओ उठि क' चलि गेला से नइँ जनलौं। चकबाक जोड़ा बिछुड़ि गेल। पियाक बिना सून सेज देखि हृदय मे एहन पीड़ा होइए जे आइ हम मरबे करब। हे सखी सब, तोरा सँ प्रार्थना जे हमरा लेल चिता सजाए दैह। विद्यापति गबै छथि आ पिया सँ मिलन के भरोस दै छथि।

[69]

कउड़ी पठओले पाब नहि घोर।
घीव उधार माँग मतिभोर॥

वास न पाबए माँग उपाति।
लोभक रासि पुरुष थिक जाति॥

कि कहब आज कि कउतुक भेल।
अपदहि कान्हक गौरव गेल॥

अएले बइसए पाब पोआर।
सेजक कहिनी पुछए बिथार॥

ओछाओन खण्डतरि पलिआ चाह।
आओर कहब कत अहिरिनि नाह॥

भनइ विद्यापति पहु रसमन्त।
सिरि सिवसिंह लखिमा देवि कन्त॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-65)

शब्दार्थ : *कउड़ी—पाइ, मतिभोर—मतिभ्रष्ट, घोर—छाछ, उपाति—भोजन, रासि—ढेर, कउतुक—तमाशा, उपदहि—कुठाम, बिथार—विस्तार, खंडतरि—खिरहरि, पलिआ—चद्दरि।*

पाठ-अर्थ : जकरा पाइयो देला पर घोर नइँ भेटै से उधारी घी मँगैए। बैसैक जगह नइँ आ भोजन चाही। ई पुरुषक जाति ने, बस लोभक ढेरी थिक।
आइ तँ एहन तमाशा भेल जे बेस कूठाम मे पहुक गौरव ढहि गेलनि। बैसबाक लेल जकरा पुआर कहुना क' भेटए से ओछाओनक बारे मे विस्तार सँ पूछए।
टूटल खिरहड़ि के जोगाड़ नइँ आ माँगए ओछाओनक चद्दरि।
विद्यापति कहै छथि जे लखिमा देविक पहु शिवसिंह रसमन्त छथि।

[70]

चान्द सुधा सम वचन विलास।
भल जन ततहि जाएत बिसवास॥
मन्दा मन्द बोलए सबे कोए।
पिबइते नीम बाँक मुँह होए॥
ए सखि सुमुखि वचन सुन सार।
से कि होइति भलि जे मुँह खार॥
जे जन जइसन हृदय धर गोए।
तकर तइसन तत गौरव होए॥
गौरव ए सखि धैरज साध।
पहु नहि धरए सतओ अपराध॥
जओ अछ हृदया मिलब समाज।
अबसओ रहब अजुधि भए लाज॥
काच घटी अनुगत जल जेम।
नागर लखत हृदयगत पेम॥
मधुर वचन हे सबहुतह सार।
विद्यापति भन कवि कण्ठहार॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-122)

शब्दार्थ : *बाँक—टेढ़, मंदा—नीच, खार—कटु, अजुधि—औंधी/अवनत, काच घटी—काँचक घैल, मिलब—भेटत, गाए—नुका क', हृदया—हृदय मे।*

पाठ-अर्थ : जकर वचन चानक इजोत सन सुधामय होइ छै, नीक लोक तकर विश्वास करैए। अधलाह केँ अधलाहे कहल जाइ छै जेना नीम (पिसि क') पीलाक बाद सबहक मुँह टेढ़ भ' जाइ छै।

सब बातक सार तत्व ई, जकर वचन कटु होइ से की नीक होएत। जे अपना हृदय मे जेहन भाव नुका क' रखैए तकर मान गौरव सेहो ओही अनुरूप होइ छै। गौरव धैर्य-साध्य होइए। जेहन धैर्य तेहन गौरव। सुपुरुष सैकड़ो अपराध केँ नइँ धरै छथि। यदि मोन मे समाज सँ मिलि क' रहबाक कामना हो तँ अवनत रहनाइ आवश्यक।

काँचक घैल मे जल बड़ साफ बुझाइ छै। सुपुरुष एहने पारदर्शिताक आदर करै छथि अर्थात काँच सन साफ हृदयक प्रेम ओहिना देखाइ छै।

विद्यापति कहै छथि जे मधुर वचन समस्त व्यवहारक सार तत्व छी।

कवि-मोन

[71]

खेत कएल रखबारे लूटल ठाकुर सेवा भोर।
बनिजा कएल लाभ नहि पओले अलप निकट भेल थोर॥

रामधन बनिजहु रे बेज अछ लाभ अनेक॥

मोति मजीठ कनक हमे बनिजल पोसल मनमथ चोर।
जोषि-परेषि मनहि हमे निरसल धन्ध लागल मन मोर॥

ई संसार हाट कए मानह सबो लोक बनिजार॥
जे जस बनिजए लाभ तस पाबए मूरुष मरहि गमार॥

विद्यापति कह सुनह महाजन राम-भगति अछ लाभ॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-13)

शब्दार्थ : *रखबारे—रखबार, ठाकुर—धनीक, भोर—व्यर्थ, अलप—अपन, बनिजा—व्यापार, बेज—व्याज/सुदि, जोषि—जोखि, परेषि—जाँचि-परेखि, मूरुष—मूर्ख, धन्ध—चिन्ता, मजीठ—सोना*

पाठ-अर्थ : खेती कएल तँ रखबारे लुटि लेलक। धनिकक सेवा सेहो व्यर्थ गेल। व्यापार कएल तँ लाभ नइँ भेल। अपना लग जे छल से आर कम भ' गेल।
रामधनक व्यापार करह। ब्याज मे अनेक लाभ छै।
हम मोती-सोनाक व्यापार कएल आ मोन मे कामदेव रूपी चोर केँ पोसलौं।
जाँचि-परेखि क' सबहक त्याग कएल किएक तँ मोन हरदम चिन्तामग्न रहैत छल।
एहि संसार केँ हाट बुझह आ सब केँ व्यापारी। जे जेहन व्यापार करैए ओकरा तेहन लाभ भेटै छै। मूर्ख-गमार व्यर्थ मे मरैए।
विद्यापति कहै छथि, हे महाजन। राम-भक्ति टा मे लाभ छै।

[72]

कुसुमे रचित सेज मलयज पंकज
पेअसि सुमुखि समाजे।
कत मधुमास विलासे गमाओल
आबे कहितहु पर लाजे॥

माधव! दिन जनु काहु अवगाहे।
सुरतरु तर सुखें जनम गमाओल
धुथुरा तर निरबाहे॥

दखिन पवन सउरभ उपभोगल
पिउल अमिञ रस सारे।
कोकिल कलरव उपवन पूरल
तहु कत कएल विहारे॥

पातहि सञो फुल भमर अगोरल
तरुतर लेल निवासे।
से फुल काटि कीट उपभोगल
भमरा भेल उदासे॥

भनइ विद्यापति कलिजुग परिनति
चिन्ता जनु कर कोई।
अपन करम अपने पए भुञ्जिअ
जञो जनमान्तर होई॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-167)

शब्दार्थ : *मलयज—चानन, पेअसि—प्रिया/प्रेयसि, काहु—ककरो, अवगाहे—खराप दिन/समय, अमिञ—अमृत, भुञ्जिअ—भोगू, जनमान्तर—अनेक जन्म।*

पाठ-अर्थ : फूल सँ सजाओल सेज, चानन, कमल, प्रेयसि-सुमुखिक समाज मे कते ने मधुमास (वसंत/मधुर मास) बिताओल। आब ककरो कह' मे लाज

होइए। हे माधव! एहन दिन (खराप) ककरो नइँ होइ जे कत' स्वर्गक वृक्ष (पारिजात) तर सुतै छलौं, आब धथुरक गाछ तर छी। दक्षिण-पवन (मलयानिल)क अमृत सन सौरभक उपभोग कएल। उपवन सब कोकिल-कलरव सँ भरल छल। तकरा हम विकृत क' देलौं। भमरा पाते सँ फूलक रक्षा मे गाछे तर बसि गेल छल। ताहि फूल केँ कीड़ा काटि क' खा गेल। भमरा उदास भेल। विद्यापति कहै छथि जे ई तँ कलियुग-परिणति छी। चिन्ता की ? जे करब से भोगब, सेहो जन्म-जन्मान्तर तक।

[73]

दिवस मन्द भल न रहए सब षन
बिहि न दाहिन रह वाम लो।
सेहे पुरुष वर जेहे धइरज कर
सम्पद विपदक ठाम लो॥

माधव! बुझल सबे अवधारि लो।
जस अपजस दूअओ चिरे थाकए
आओर दिवस दुइ चारि लो॥

अपन करम अपनहिं पए भुञ्जिअ
विहिक चरित नहि बाध लो।
काएर पुरुष हृदय हारि मर
सुपुरुष सह अवसाद लो॥

तीनि भुवन महि अइसन दोसर नहि
विद्यापति कवि भान लो।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रमान लो॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-174)

शब्दार्थ : *षन—क्षण, विहि—विधाता, काएर—कायर/कातर, महि—पृथ्वी।*

पाठ-अर्थ : सब दिन एक रंग नइँ होइए, ने विधाता सब दिन वाम रहै छथि। पुरुष वैह जे धैर्यवान हो आ विपत्तिक समय विचलित नहि हो।
सब टा अवधारि लिअ। जस आ अपजस टा सब दिन रहैए, बाकी बस दुइ-चारि दिनक लेल।
अपन करमक भोग अपने कर' पड़त। एहि मे विधाता कोनो बाधा नइँ ठाढ़ करै छथि। कायर, हृदय हारि जाइए आ उत्तम पुरुष अवसाद सहन करैए।
विद्यापति कहै छथि जे एहन सुपुरुष एहि तीनू-भुवन मे पृथ्वी पर मात्र लखिमा-पति, रुपनराएन शिवसिंह टा छथि।

[74]

आजे अकामिक आएल भेषधारी
भिषि भुगुति लए चललि कुमारी।

भिषिआ न लेइ बढ़ाबए रिसी
बदन निहारए विहुँसी-विहुँसी।

ए ठमा सखि संग निकहि अछली
ओहि जोगिआ देखि मुरुछि पलली।

दूर कर गुनपन अरे भेषधारी
कां डिठिअओलह राजकुमारी।

केओ बोल देखए देहे जनु काहू
केओ बोल ओझा आनि नचाहू।

केओ बोल जोगिआहु देहे दहु आनी
हुनिकिओ भए वरू जिबओ भवानी।

भनइ विद्यापति अभिमत सेवा
चन्दलदेवि पति बैजल देवा।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-254)

शब्दार्थ : *भिषि—भीख, रिसी—तामस, मुरुछि—मूर्छित, हुनिकिओ—हुनके, दिठिअओलह—आँखि लगओलह, भुगुति—भोग भक्ति।*

पाठ-अर्थ : आइ ओ रचि-रचि क' जोगिया भेष धारण क' एकाएक आबि गेल। भीख देब' कुमारि चलली। ओ जोगिआ भीख नै ल'क' हँसि-हँसि क' देख' लागल। सखि जे एखने ठीके छली से ओइ बहुरुपी केँ देखि क' मूर्च्छित भ' गेली।

भेषधारी केँ सब डँटैए जे ई कोन गुनपन देखओलह, हमर सखी केँ नजरि लगौलह जे ओ बेहोश भ' गेली। अपन जादू-टोना के भामट समेटह।

केओ कहए सखी केँ एकांत मे ल' जाइ जे केओ एहन अवस्था मे नइँ देखए। केओ कहए जे ओझा-गुनी केँ बजौल जाए आ नचाओल (भाव कराओल) जाए। फेर केओ कहए जे सखी केँ एहि जोगिआ भेषधारीएक संग लगा देल जानि। एकरे संग भ' रहथु, मुदा जीबथु।

[75]

कतन झोरी सिन्दुरे भरलि
भसमे भरु बोकान।
बसह केसरि मजूर मूसा
चारुहु पलु पलान॥
डिमिकि डिमिकि डंबरु बाजए
इसर खेलए फागु।
भसमे सिन्दुरे दुअओ खेड़ा
एकहि दिवसे लागु॥
सञ्झाञे सिन्दुरे भरु सरुसिति
लाछीहि भरलि गोरी।
इसरे भसमे भरु नराञेन
पीत वसन बोरी॥
एक तञो नांगट अओके उमत
ईसर धुथुर खाए।
अओके उमति खेड़ि खेलाबए
किछु न बोलए जाए॥
गरुड़ वाहन देव नराएन
बसह चढ़ु महेस।
कवि विद्यापति कौतुके गाओल
संगहि फीरथि देस॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-259)

शब्दार्थ : *बोकान—झोरा, पलान—जीन, खेड़ा—खेल, इसर—महादेव, वोरी—बोरि देलक, अओके—आर, फीरथि—घुमथि, सञ्झाञे—साँझ मे, सरुसति—सरस्वती, लाछीहि—लक्ष्मी।*

पाठ-अर्थ : कतेको झोरी सिन्दुर सँ भरल, कतेको झोरा मे भस्म भरल। बसहा, सिंह, मयुर आ मूस केँ नवका लबादा (जीन) भेटलैए। डिमिक-डिमिक डमरू बजैए, इसर होरी खेलाइ छथि। एक्के दिन मे सिन्दुर आ भस्म, दुनू ल'क' खेल भ' रहल छै। संध्या अपन सिन्दुरी रंग सँ सरोसती केँ रंगलनि, लक्ष्मी केँ गौरी रंगि देलनि। इसर भस्म लगा क' नराएनक पीताम्बर केँ बोरि देलनि। इसर, एक तँ नांगट, दोसर धथुर खा क' उन्मत, से एहन उमतिक' खेलाइ छथि जे देखि क' अवाक छी। नराएन देवक गरुड़ सवारी करै छथि आ महेसक सवारी बसहा। तैयो दुनू संगहि भरि देस घुमै छथि।

[76]

सूखल सर सरसिज भेल झाल
तरुन तरनि तरु न रहल हाल।
देखि दरनि दरसाब पताल
अबहुँ धराधर धरसि न धार॥

जलधर जलधन गेल असेखि
करए कृपा बड़ परदुख देखि।
पथिक पिआसल आब अनेक
देखि दुख मानए तोहर विवेक॥

पलटलि आसा निरसनिहारि।
कहदहुँ कञोन होइति ई गारि।
कञोन हृदअ नहिं उपजए रोस
ओल धरि करिअ एहें पए दोस॥

विद्यापति भन बुझ रसमन्त।
राए सिवसिंह लखिमा देवि कन्त॥

(रा.पु.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-22)

शब्दार्थ : *सर—पोखरि, सरसिज—कमल, झाल—शुष्क, तरुन—तेज, तरनि—सूर्य, तरु—वृक्ष, हाल—नमी, दरनि—दरारि, धराधर—मेघ, असेखि—समस्त, बड़—पैघ लोक, ओर—अंत, रोस—तामस, निरसनिहारि—देखितहि निराश।*

पाठ-अर्थ : पोखरि सुखा गेल, कमल झरि गेल। सूर्यक ताप सँ गाछ सब मे आर्द्रता नइँ रहल।
पृथ्वी पर दरारि फाटल जाहि सँ पताल देखाइए। हे मेघ! आबहु अहाँ पानि नहि बरिसा रहल छी।
मेघक समस्त घन (जल) समाप्त भ' गेल। ई उचित नइँ। पैघ लोकक काज छै जे अनकर दुख देखि कृपा करए।
पिआसल बटोही केँ पोखरि देखि क' जे आस लौटल रहै से जलहीन देखि दुखी मन सँ जे गारि-सराप दैए, से ककरा लगतै?
ककरा हृदय मे एहि सँ रोष उत्पन्न नइँ हेतै। परंतु हरदम तामसे मे रहनाइ उचित नइँ।
विद्यापति कहै छथि जे रसज्ञ शिवसिंह सब बात जनै छथि।

[77]

बिरला केँ भल खिरहर सोम्पलह
दूध रहल अछ डाढ़ी।
दधि दुध घोर घीव सञे खएलक
सगरि रएनि सुखे काढ़ी॥

अचेतन अबहुँ न चेतह अपाने।
अपनुक कुगति अपने नहि जानह
की उपदेसत आने॥

बटइ गराँ मूर बान्धि पठओलह
भानस तेलक माझे।
तेहि बिरलबाञे मुख-सुखे खाएल
राति दिवस दुहु सांझे॥

मुन्दहर घर मुन्दहरिआ कएलह
मूस मानु सब छाड़ी।
काटि संखारी खंडे खंडे कएलक
सबे धन घएलक गाड़ी॥

घेंगुल बान्धि पटोरां घएलह
अइसनि तुअ परिपाटी।
पतरागी जञो खंडे खंडे कएलक
मुख-सुखें हललक काटी॥

गोबरें बान्धि बीछ घर मेललह
एकर होएत परिनामे।
राजा सिवसिंह रुपनराएन
लखिमा देवि रमाने॥

(रा.पु.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-26)

शब्दार्थ : *बिरला—बिलाड़ि, खिरहर—खोर/मटकुर, सोम्पलह—देलह, अचेतन—अज्ञानी, कुगति—कुचालि, बटइ—बटेर, गरां मूर—गरदनि मुड़ी, मुन्दहर घर—भंडार घर, मुन्दहरिआ—बंद केनाइ, मूस मानु—मूसक बिअरि, संखारी—पेटार, घेंगुल—झिंगुर, पतरागी—पेटू, मेललह—रखलह।*

पाठ-अर्थ : बिलाड़ि केँ खोर-मटकुर (गोरस भंडार) सौंपि देलहक तँ भरि राति दूध-दही-घी घोर आनन्द पूर्वक खेलक। आब डाढ़ी टा बाँचल छह। अपन कुचालि अपने नइँ बुझबह तँ आन की करत?

बटेर केँ बान्हि-छेकिक' भानस घर मे रखलह। तकरो रखबारी बिलाड़ि के देलहक तँ ओ दुनू साँझ आनन्दपूर्वक सब टा खा गेलह।

भंडार घर के ताला तँ लगओलह मुदा मूसक बीअरि छोड़िए देलहक। मूस पेटार सब केँ खंड-खंड केलक आ सब धन ल' जा क' गाड़ि अएलह।

पटोर मे झिंगुर पैसओलह। ओ पेटू सब टा केँ काटि क' चिर्री-चोंत क' देलकह। गोबर मे मिला क' बीछ के जे घर मे ल' अनलह तकर तँ दुष्परिणाम हेबे टा करतह।

[78]

विदिता देवी विदिता हो
अविरल केस सोहन्ती।
एकां एक सहस को धारिनी
जनि रंगा पुर नटी॥

कज्जल रूप तुअ काली कहिअए
उज्ज्वल रूप तुअ वानी।
रविमंडल परचंडा कहिअए
गंगा कहिअए पानी॥

ब्रम्हा घर ब्रम्हानी कहिअए
हर घर कहिअए गौरी।
नाराञेन घर कमला कहिअए
के जान उतपति तोरी॥

विद्यापति कवि वरें एहो गाओल
जाचक जन के गती।
हांसिनि देइ पति गरुड़नराञेन
देवसिंह नरपती॥

(रा.त./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-28)

शब्दार्थ : *विदिता—सर्वज्ञात, अविरल—सघन, सोहन्ती—शोभायमान, जनि—स्त्री, रंगा—रंगमंच, पुर नटी—पूर्ण कर'बाली नटी, बानी—सरस्वती, कमला—लक्ष्मी, गती—आधार, उतपति—उत्पत्ति।*

पाठ-अर्थ : हे विख्यात देवी तों सबठाम छह। तोहर सघन केश शोभायमान छह। तों अनचोकें हजारो केँ धारण क' सकैत छह आ स्त्री मनक रंग-आस केँ पूरन कर'बाली छह।
कारी रूप मे तों काली छह, उज्जर रूप मे सरस्वती। सूर्यमंडलक प्रचंड रूप तोंही छह आ जल रूप मे तोंही गंगा छह।
ब्रह्मा घर में तों ब्रह्माणी छह, महादेवक घर मे गौरी आ नारायण घर मे कमला छह। तोहर उत्पत्ति केओ नइँ जनैए।
विद्यापति कहै छथि जे याचना केनिहारक अवलम्बन तों छह कि राजा देवसिंह छथि।

[79]

नव अनुरागिनि राधा
किछु नइ मानइ बाधा।

एकलि कएल पयान
सुपथ-विपथ नहि जान।

तेजल मणिमय हार
उच कुच मानइ भार।

कर सञो कंकण-मुंदरी
पन्थहि तेजलि सगरी।

मणिमय मञ्जिर पाए
दुरहि तेजि चलि जाए।

यामिनि घन अन्धियार
मनमन्थें हिअ उजियार।

विधिन-विथारित बाट
प्रेमक आयुधें काट।

विद्यापति कवि भान
अइसनि न हेरिअ आन।

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-93)

शब्दार्थ : *पयान—प्रस्थान, कंकण—कंगना, मुंदरी—औंठी, मञ्जिर—नुपुर, यामिनि—राति, विथारित—विस्तारित/पसरल, विधिन—विघ्न, आयुधे—अस्त्र सँ, हेरिअ—देखल।*

पाठ-अर्थ : नव अनुरागी राधा, कोनो बाधा केँ नइँ मानैए। एसगरे चलि देलनि, नीक-अधलाह बाटक खेयाल ने केलनि। मनिमय हार, कंगना, औंठी, नुपुर केँ भार बुझि बाटहि मे तेजैत गेली। रातुक समय आ घनघोर अन्हार केँ मोनक कामनाक इजोत सँ कटैत गेली। बाट नमहर आ विघ्न सँ भरल छल जकरा प्रेमक अस्त्र सँ पराजित केलनि।
विद्यापति कहै छथि, एहन अनुरागी दोसर नइँ देखल।

[80]

नव वृन्दावन नव नव तरुगण
नव नव विकसित फूल।
नवल वसन्त नवल मलयानिल
मातल नव अलिकूल॥

बिहरइ नवल किसोर।
कालिन्दि पुलिन कुञ्ज नव सोभन
नव नव प्रेम विभोर॥

नवल रसाल मुकुल-मधु-मातल
नव कोकिल कुल गाब।
नव जुवतीजन चित उमताएल
नव रसें कानन धाब॥

नव जुवराज नवल नव नागरि
मीलए नव नव भाँति।
नित नित अइसन नव नव खेलन
विद्यापति मति माति॥

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-127)

शब्दार्थ : *अलिकुल—भ्रमर दल, कालिंदि—यमुना, पुलिन—तट, रसाल—आम, मुकुल—मज्जर, उमताएल—उन्मत/जोश मे, धाब—दौड़िक' गेल।*

पाठ-अर्थ : वृन्दावन नव, ओकर गाछ सब नव आ गाछ मे नव-नव फुलाएल फूल। नवल वसंतक नवल मलय पवन मे नव भमराक दल सब बताह भेल अछि।

नवयुवक सब विहार क' रहलए। यमुनाक तट पर, कुंज सब, नव रूपें शोभायमान छै आ सब केँ सब नव तरहक प्रेम सँ ओत-प्रोत अछि।

नव आमक मज्जर देखि नव कोकिलक दल गाबि रहलए, नवयुवती सबहक चित उन्मत्त भेल छै आ ओ नव रस सँ भरलि उपवन दिस भागल जाइए।

ई नवयुवक-नवयुवति सब नव-नव ढंग सँ भेंट करैए। प्रतिदिनक एहि नव-नव खेल सब केँ देखि, विद्यापतिक मोन सेहो माति रहल छनि।

[81]

बाजत द्रिगि-द्रिगि धो-द्रिमि द्रिमिञा
नटति कलावति माति श्याम संग
करे करू ताल प्रबन्धक धनिञा।

डम-डम डम्फ, द्रिमिकि-द्रिमि मादल
रुनु-झुनु माञ्जिर बोल।
किंकिनि रन-रनि बलया कन-कनि
निधुवने रास तुमुल उतरोल।

बीन रबाब-मुरज सरमंडल
स-रि-ग-म-प-ध-नि-स बहुविध भाव।
धेटिता-धेटिता-धुनि मृदंग गरजनि
चंचल सरमंडल करु राब।

श्रमभरे गलित लुलित कबरी-युत
मालति माल बिथारल मोति।
समय वसन्त रास-रस वर्णने
विद्यापति मति छोभित होति।

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-129)

शब्दार्थ : *कलावति—नर्तकी, माति—मातल, करे—हाथ सँ, धनिञा—सुन्दरी, डम्फ—डफ, मञ्जिर—मजीरा/घूँघरू, किंकिनि—करधनी, बलया—कंगना, उतरोल—बोहिआइत, निधुवने—आमोद-प्रमोद कारणे, तुमुल—जोर सँ, मुरज—पखावज, राब—गुंजार, गलित—छिड़िआएल, लुलित—हिलैत-डोलैत, कबरीयुत—चोटी मे गाँथल, विथारल—छिड़िआएल, छोभित—कुंठित।*

पाठ-अर्थ : बाजा बाजि रहलए। श्याम संगे कलावन्ती सब नाचि रहलए। रास-नृत्य प्रबंध केनिहारि सखी सब हाथ सँ ताल द' रहल छथि।
डमरू आ मादल संगे घूँघरू, करधनी आ कंगना सेहो बाजि रहलए जाहि सँ पूरा उपवन बोहिया रहलए। बीन, रबाब, पखावज, स्वरमंडल आ मृदंग बाजि रहलए। नृत्यक श्रम सँ चोटी मे गाँथल माला डोलैए आ मालति माला टूटि क' छिड़िया जाइए। वसन्तक समय आ रासक ई अद्‌भुत रूप देखि विद्यापति कुंठित छथि। (स्वयं ओहि मे शामिल नहि भ' सकबाक वा सम्पूर्ण विवरण नहि द' सकबाक विवशता सँ)।

[82]

कुसुमित कानन-कुञ्ज बसि
नयनक काजर घोरि मसि।

नख सञो लिखल नलिनिदल पात
लीखि पठाओल आखर सात।

पहिलहि लिखलनि पहिल वसंत
दोसरे लिखलनि तेसरक अंत।

लिखि नहि सकली अनुज वसंत
पहिलहि पद अछि जीवक अंत।

भनई विद्यापति आखर लेख
बुध जन हो से कहए विशेष।

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-172)

शब्दार्थ : *नलिनि—कमल, दल—पात, पहिल वसंत—वसंत ऋतुक पहिल भाग—चैत/मधु, दोसर भाग—बैसाख/माधव, तेसरक अंत—वसंत, सँ पहिनेक ऋतु हेमंत, के अंत-कर, (माने लिखलनि—मधुकर) अनुज वसंत—वसंतक बाद माने दोसर भाग, माधव, एकर पहिल पद म/ तँ लिखलनि की? मधुकर माधव। दुनू शब्द मिलाक' सात अक्षर।*

पाठ-अर्थ : फूल सँ भरल फुलवारी मे बैसि, आँखिक काजर सँ मोसि (स्याही) बना, नहक लेखनी सँ कमलक पात पर सात आखरक चिट्ठी लिखि पठओलनि। पहिने 'मधु' लिखलनि, तखन 'कर' लिखलनि आ अंत मे माधव लिखलनि तँ भेल 'मधुकर माधव' माने सात आखर।
विद्यापति कहै छथि जे बुधिआर लोक सब आखर गनि (लखि)क विशेष व्याख्या करै छथि।

[83]

बड़ जन करए पिरीति रे
कोपहु न तेजए रीति रे।
काक-कोइलि ए जाति रे
भेम-भमर ऐ भांति रे।
हेम हरदि कत बीच रे
गुनहि बुझिअ ऊँच-नीच रे।
मनि कादब लेपटाए रे
तें कि तकर गुन जाए रे।
विद्यापति कवि भान रे
सुपुरुष न नर निदान रे।

(ग्रि./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-490)

शब्दार्थ : *रीति—मर्यादा, कदब—थाल, भेम—भेम्ह, मनि-मणि, निदान—नीच, हेम—हींग।*

पाठ-अर्थ : जे पैघ लोक होइए ओकर पिरित उत्तम होइ छै। ओ क्रोधावस्था पर्यंत मे मर्यादाक त्याग नइँ करैए। कौआ आ कोइली, एक्के जातिक होइए परंतु दुनूक आचरण मे भेद छै। तहिना भेम्ह आ भमरा एक्के भाँतिक होइतो फराक अछि। तहिना हींग आ हरदि मे अंतर होइ छै। असल मे गुणक आधार पर ऊँच-नीचक निर्धारण होइ छै। मणि जँ थाल मे लेभराए जाए तैयो ओकर गुण नइँ जाइ छै।

विद्यापति कहै छथि जे सुपुरुष कखनो मर्यादाक अतिक्रमण नइँ करै छथि।

[84]

जाड़ल बाम्भन तेज सनान
जाड़लि मानिनि तेजए मान।

जाड़ल राड़ घौकरी लाब
जाड़ल रसिक कते ना गाब।

जाड़ आएल कहब काही
बड़ पराभव पवन चाही।

सबहु आगिक सेवा करथि
पिठिक जाड़ सेहओ नहि हरथि।

अनल फुकिअ हेरिअ सुर
सिसिर पाबि सेहओ भेल दुर।

जूझि का हो सबकां हार
जाड़ल वीर कैसे होएत बहार।

मनहि मन करिअ नेआर
तइसन सिंह तइसन सिआर।

सरस कवि विद्यापति गाब
केओ नइ अइसन जाड़ छड़ाब

सकल जगत जाड़ हरन
कुमार अमरसिंह सरन।

(रा.पु.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-88)

शब्दार्थ : *घौकरी—सिकुड़ि क' बैसनाइ, अनल—आगि, सुर—सूर्य, जुझि—लड़ि*

पाठ-अर्थ :जाड़ दुआरे ब्राह्मण स्नान केनाइ छोड़ि दैए। जड़ाएल मानिनि मानक त्याग करैए। जड़ाएल शूद्र/गरीब घोकड़ी लगौने रहैए। जड़ाएल रसिक की ने की गाबि क' समय कटैए। जाड़क शिकाइत कत' करू। ताहि पर सँ हवा आर पराभव मे दैए। सब आगि के सेवने रहैए। ओहो पीठक जाड़ हरण नइँ करैए। आगि फूकू, सूर्य दिस ताकू। मुदा ओहो जाड़ अबिते दूर चलि जाइ छथि। जाड़ सँ लड़ब माने पराजय निश्चित से जड़ाएल वीर घर सँ नइँ बहराइए। मने मन सोचि क' देखू, जाड़ मे जे सिंहक हाल, सैह सियारक हाल।
विद्यापति कहै छथि जे एहन केओ नइँ जे जाड़ सँ मुक्ति दिआ सकए।

[85]

चरित चातर चित्ते बेआकुल मोर मोर अनुबन्धे।
पूत कलत्त सहोदर बान्धव सेख दसा सब धन्धे॥

ए हर! गोसाञि नाह! मोहे जनु देह उपेखी।
जम अगाँ मुँह उतर डर छाड़त जबे बुझाओत लेखी॥

अपथ पथ चरन चलाओल भगति मति न देला।
पर-धनि-धने मानस लाओल जनम निफले गेला॥

कपट नरि पलु कलेवर गीड़ल मदन गोहे।
भल-मन्द हमे किछु न गुनल जनम बहल मोहे॥

कएल मञे उचित भेल अनुचित मने-मन पचताबे।
आबे कि करब सिर पए धुनब गेल दिना नहि आबे॥

भनइ विद्यापति सुनिअ महेसर तइलोक आन न देवा।
एतए जे बरु से बरु करब ओतए सरन मोहि देबा॥

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-125)

शब्दार्थ : *चरित-चातर—घर-दुआरक महाजाल, मोर-मोर—हम्मर हम्मर, अनुबन्धे—बन्हेज, पुत्त—पुत्र, कलत्त—स्त्री, सेष दशा—अंत समय, धंधे—चिन्ता, कपट नरि—कपट रूपी नदी, बहल—बीतल, भल-मन्द—नीक-बेजाए, मदन गोहे—काम गोहि*

पाठ-अर्थ : घर-दुआरिक महाजाल, हम्मर-हम्मर के बन्हेज, पुत, स्त्री सहोदर बीच मे रहि आब अंत समय मे मात्र चिन्ता टा बाँचल। जमराजक आगाँ जखन सब लेख पढ़ल जाएत तखन हे गोसाञि, अहाँ हमर उपेक्षा नइँ करब से आग्रह। अधलाह बाट पर चललौं, भक्ति दिस मोन नइँ गेल, अनकर धन आ स्त्रीक कामना कएल...असल मे जीवन व्यर्थ चलि गेल।
कपट नदी मे देह भसाओल, मदन रूपी गोहि गीड़ि लेलक, नीक बेजाए बिना गुनने हमर समय बीति गेल।
उचित बुझि जे कएल से अनुचित भेल। आब पश्चाताप होइए। कतबो माथ-पएर पटकब बीतल दिन घुरि क' नइँ आओत।
विद्यापति कहै छथि जे हे महेस, तोरा सन दोसर कोनो आर देव नइँ। एत' हमर जे हो, ओत' हमरा शरण दिहक।

[86]

सपन देखल हम सिबसिंह भूप
बतिस बरख पर सामर रूप।

बहुत देखल गुरुजन प्राचीन
आब भेलहुँ हम आयु विहिन।

समटु समटु निज लोचन नीर
ककरहु काल न राखथि थीर।

विद्यापति सुगतिक प्रस्ताव
त्याग के करुना रसक प्रभाव।

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-631)

पाठ-अर्थ : सपना देखलहुँ। सपना मे शिवसिंहक सामर रूप बत्तीस बरख पर देखलहुँ। फेर देखलहुँ अनेको गुरुजन केँ। लगैए आब हमरो आयु बाँचल नहि। से आँखिक नोर केँ समेटि लेबाक छै, काल ककरो नइँ छोड़ैए। कामना आ त्याग पर करुण-रसक प्रभाव हेबाक चाही।

[87]

दुल्लहि तोहर कतए छथि माए
कहुन्ह ओ आबथि एखन नहाए।

वृथा बुझथु संसार विलास
पल-पल नाना भांतिक त्रास।

माए-बाप जञो सद्गति पाब
सन्तति काँ अनुपम सुख आब।

विद्यापति आयु अवसान
कातिक धवल त्रयोदसि जान।

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-630)

पाठ-अर्थ : दुल्लहि (कविक पुत्री) तोहर माए कत' छथुन्ह। हुनिका कहुन्ह जे ओ स्नान क' आबथि। एहि संसार आ ओकर विलास केँ व्यर्थ बुझथु। एत' प्रतिपल अनेक तरहक भय व्याप्त छै।
(दुल्लहि) माए-बाप केँ जँ सद्गति भेटैत छै तँ ई संततिक लेल अनुपम सुखक बात भेल।
कार्तिक धवल त्रयोदसी केँ विद्यापतिक आयु समाप्त बुझू।

[88]

दूर दुग्गम दमसि गज्जेओ
गाढ़ गढ़ गुढ़ोअ भज्जेओ
पातिसाह ससीम सीमा समर दरसेओ रे।

ढोल तरल निसान सद्दहि
भेलि काहल संख नद्दहि
तीनि भुअन निकेत केतकि सान भरिएओ रे।

कोहे नीरे पयान चलिओ
वायु मध्ये राय गरुओ
तरनि तेअ तुलाधार परताप गहिओ रे।

मेरु कनक सुमेह कम्पिअ
धरनि पूरिय गगन झम्पिअ
हाति तुरय पदाति पयभर कमन सहिओ रे।

तरलतर तरबारि रंगे
बिज्जु दाम छटा तरंगे
घोर घन संघात वारिस काल दरसेओ रे।

अन्धकुअ कबन्ध लाइअ
फेरबी फफ्करिस गाइअ
रुहिरमत परेत भूत बेताल बिछलिओ रे।

पार भइ परिपन्थि गज्जिअ
भूमिमंडल मूंडे मंडिअ
चारू चंदकलेव कित्ति सुकेत तुलिओ रे।

राम रूपे स्वधम्म दिखिखअ
दान दप्पे दधिचि रखिखअ
सुकवि नव जयदेव भनिओ रे।

देवसिंह नरेन्द्र नन्दन
सत्त नरबइ कुल निकंदन
सिंह सम सिबसिंह राया सकल गुनक निधान गनिओ रे।

(की./बे., वि.प., प.सं.-140)

शब्दार्थ : *दुग्गम—दुर्गम, गज्जेओ—गंजन केलनि/तोड़ि देलनि, गाढ़—मजगूत, गुढ़ेओ—गूढ़/जटिल, भज्जेओ—खंडित, पातिसाह—बादशाह, ससीम सीमा—सीमा मे प्रवेशक, दरसेओ—देखाओल, भेलि—रणभेरी, काहल—एक तरहक युद्ध बाजा, नद्दहि—नाद करैत, निकेत—घर, कोहे नीरे पयान—झरनाक जल जकाँ प्रस्थान, तरनि—सूर्य, तेअ—तलवार, मेरु—पर्वत, कनक—सोना, सुमेह—सुमेरू, कम्पिअ—कंपैए, धरनि—धरती, पूरिय—भरल, झम्पिअ—झंपाएल, हाति—हाथी, तुरय—घोड़ा, पदाति—पैदल सेना, पयभर—पएरक आघात सँ उड़ैत गरदा, तरलतर—तीक्ष्ण, तरबारि-तरुआरि, बिज्जु—बिजुरी, कबन्ध—गरदनि विहीन धड़, फेरबी—सियार, फफ्करिस—चीत्कार, रुहिरमत—रक्तपान सँ मातल, बिछलिओ—नाच करैत, परिपन्थि-प्रतिस्पर्धी, मंडिअ—भरि देल, चंदकलेव—चन्द्रकला, कित्ति—कीर्ति, रखिखअ—राखल, सत्त—शत्रु, नरबइ—नरेश*

पाठ-अर्थ : दूरस्थ दूर्गम-गूढ़-मजगूत गढ़ केँ तोड़लनि, बादशाहक सीमा मे जाक' लड़ाइ केलनि। विभिन्न बाजा सभक निनाद सँ तीनू भुवन गनगना गेल। सेना एहि तरहें प्रस्थान केलक जेना पहाड़ सँ झरना झहरैत हो, हवा मे गरुड़ उड़ैत हो। एहि सभक मध्य राजा शिवसिंह सूर्यक समान तेज आ प्रताप सँ भरल छलाह! उड़ैत गरदा सँ धरती आकाश तोपा गेल। हाथी-घोड़ा आ पैदल सेनाक भार धरतीओक लेल असहनीय भ' गेल। तलवारक प्रहार सँ धरती रक्तक वर्षा सँ भरि गेल। मूंड काटल धड़ सब तड़फड़ क' रहल छल, सियार चीत्कार क' रहल छल। रक्तपान केने भूत-प्रेत-बेताल नाचि रहल छल। अपन सुकीर्ति केँ चन्द्रकला सन पसारि देलनि। ओ राम जकाँ स्वधर्म रक्षा केलनि, दधीचि सन दानी भेलाह।

अभिनव जयदेव विद्यापति कहै छथि जे शिव सिंह, देवसिंहक पुत्र, शत्रुक काल, सिंह सन प्रतापी आ समस्त गुण-संपन्न छथि।

[89]

कि कहब हे सखि पामर बोल
पाथर भासल तल गेल सोल।

छेदिअ चम्पक चन्दन रसाल
रोपल सिमर जिवन्ति मन्दाल।

गुनवति परिहरि कुजुवति संग।
हीर हिरन तेजि रंगहि रंग।

पंडित गुणिजन दुख अपार
अछए परम सुख मूढ़ गमार।

गिरिह निरीहित रांक परबीन
चोर उजोरल साधु मलीन।

विद्यापति कह विधि अनुबन्ध
सुनइते गुणिजन मन रहु धन्ध।

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-111)

शब्दार्थ : *पामर—नीच/दुष्ट, तल—पेन मे/नीचाँ, सोल—रस्सी, रसाल—आम, जिवन्ति—गुड़ुच/गुड़ीच, मन्दाल—अकोन, कुजुवति—कुटनी स्त्री, हीर—हीरा, हिरन—(हिरण्य) सोना, रंगहि—रांग सँ, गिरिह—गृहस्थ, निरीहित—अकर्मण्य, रांक—रंक/भिखारि, परवीन—प्रवीण/कुशल, धंध—द्वन्द्व।*

पाठ-अर्थ : दुष्ट के वचन सँ एना लगैए जेना पाथर दहाए आ रस्सी डुबि जाए। चम्पा, चानन आ आमक गाछ काटि क' सिम्मर, गुड़ुंच आ अकोन रोपल जा रहलए।

गुणवती के त्याग होइए आ कुटनी के संग राखल जाइए। हीरा-सोना केँ त्यागि क' रांगा संगे आनन्दित भेल जाइए।

विद्वान, गुणी लोक दुख भोगैए आ मूर्ख-चपाट सब परम सुख प्राप्त क' रहल अछि।

गृहस्थ अकर्मण्य आ भिखारि चतुर-प्रवीण मानल जाइए। चोर (चान सन) चमकैए आ सज्जन उदास छथि।

विद्यापति कहै छथि जे एहन हाल केँ विधाताक विधान मानल गेला सँ गुणीजन (असमंजस) द्वन्द्व मे पड़ल छथि।

[90]

अरे अरे! भमरा! तोञे हित हमरा
बँञुसि आनह गजगामिनि रे।
आजुकि रूसलि कालि जञो बँञुसबि
तीति होइति मधु-जामिनि रे॥

तीति रजनिञा तिनि जुगे जनिञा
दिठिहुक ओत देसाँतर रे।
सरोबर सोषें कमल असिलाएल
नगर उजलि भेल पाँतर रे॥

एकसर मनमथ दुइ जिव मारए
अपन अपन भिन वेदन रे।
दुइ मन मेलि कमने बेकताएब
दारुन प्रथम निवेदन रे॥

मानक भञ्जन जसु गुन रञ्जन
विद्यापति कवि गाओल रे।
लखिमादेवि पति सिवसिंह नरपति
पुरुब जनम तपें पाओल रे॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-118)

शब्दार्थ : *हित—मित्र, बँञुसि—मनाएब, तीति—तीत, जनिञा—समान, दिढिअहु—आँखिक, ओत—अढ़, देसांतर—दूर, सोषें—सूखेनाइ, असिलाएल—मुरुझाएल, उजलि—उजड़ि, पांतर—निर्जन, कमने—कोन, बेकताओब—व्यक्त करब, दारुन—कठिन, जसु—जकर।*

पाठ-अर्थ : हे हमर मीत भ्रमर, प्रिया केँ बौंसि आनह। आइ रुसली आ काल्हि बौंसब तँ वसन्तक ई राति तीत भ' जाएत। तीत राति, तीन युगक समान भ' जाइ छै। आँखि सँ अढ़ जेना दूर देस गेल बुझाइ छै। सरोवर सुखा गेला सँ कमल मुरुझाइ छै। लगै छै जेना नगर उजड़ि गेल आ पांतर भ' गेल।
ई एसगर कामदेव दू जीव केँ मारैए। ओना दुनूक फराक वेदना छै। से दुनू मन मिलि क' केना प्रेम प्रगट करब ? किएक तँ पहिल निवेदन बड़ कठिन होइ छै। मान भंग कर'क गुण जकरा मे होइ से बड़ प्रसन्न कर'बला होइए, जेना कि लखिमाक पुण्यक प्रतिफल 'शिवसिंह नरपति'।

[91]

प्रण्यी मनमथ करहि पाएत
मनक पाछे देह जाएत।
भूमि कमलिनी गगन सुर
पेम पन्था कतए दूर।
बाध न करहि रामा
पुर विलसिनि पिअतम कामा।
बदने जीनि कहु करसि मन्दा
लग न आओत लाजे चन्दा।
तेहि सकिअ पथ उजोर
गमन तिमिरहि तोर।
काज संशय हृदय बंका
कत न उपजए विरह शंका।
सबहि सुन्दरि साहस सार
तोहि तेजि के करए पार।
सकल अभिमत सिद्धिदायक
रूपे अभिनव कुसुम सायक।
राए सिवसिंह रस अधार
सरस कह कवि कंठहार।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-194)

शब्दार्थ: *मनमथ—कामदेव, पन्था—बाट, कामा—काम्य/मनोरथ, जिनि कहु—जीतिक', बंका—टेढ़, कुसुम सायक—कामदेव।*

पाठ-अर्थ : अनुरागी मनक देह अनुसरण करैए। धरती पर कमलिनि फुलाइए आ आकाश मे सूर्य चमकै छथि। तखन कहू जे प्रेमक बाट कोन दूर भेल। कोनो बाधा नइँ। मनोरथ पूरा होनि। काजक समय हृदय मे अनेक बात अबै छै, शंका होइ छै। तैयो केनिहार चानक इजोत केँ मलिन क' दैए। चान लाजे नुका जाइए। एहि अन्हार मे अपने इजोत सँ गमन कर' पड़ै छै।
सब सँ उपर होइ छै साहस। तों से क' सकै छह। साहस करह आ बाट केँ पार करह।

[92]

सुन्दरि ! जओ तोहि पिसुनक भीति।
अपन अहित हित पहिलहि बूझिअ
न करिअ पर सओ पिरीत॥

एक जिव एक तनु विभिन करह जनु
जइओ गरुबि गुरु लाजे।
जुग दस जपिअ तइओ नहि पाइअ
सुवदनि सुपहु समाजे॥

पहिलहि आस पास अरुझओलह
आब किए करह उदासे।
की हरि हीन कलाओ एके बुझलह
की तोहें विरति विलासे॥

अथिर जौवन अथिर जीवन
थिर अपजस थिर लाजे।
जदि परिनाम अइसनि धनि होएब
एत कइए की काजे॥

(भा./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-360)

शब्दार्थ : *पिसुन—चुगिला, भीति—भय, अथिर—चलायमान।*

पाठ-अर्थ : तोरा जखन चुगिला सँ डर होइ छलह तँ अपन हित-अहित पहिने बुझितह आ झट द' अनका सँ प्रेम नइँ कर' लगितह।
एक तन एक प्राण के फराक जुनि करह...ई पैघ लाजक बात छी जे जुग-जुग जपलाक बादो सुपहु समाज मे नइँ भेटत।
पहिने लग-पास सबके मुरुझओलह आ आब उदास होइ छह। की तोहर पिया अधलाह बात आ कला केँ एक्के बुझै छथुन आ कि हुनका विलास सँ विरक्ति भ' गेलनिहें ?
ई जीवन, ई यौवन सब अस्थिर अछि...मात्र यश आ लाज स्थिर होइ छै। से जत' एहन परिनाम हो, ओत' किए किछु कर'क चाही ?

[93]

विगलित चिकुर मिलित मुखमंडल
चान्द बेढ़ल घनमाला।
मनिमय कुंडल स्रवने दुलित भेल
घामे तिलक बहि गेला।

सुन्दरि तुअ मुख मंगलदाता
रति विपरीत समय यदि राखब
कि करब हरि हर धाता।

किंकिनि किनि-किनि, कंकन कन-कन
रूनझुन नुपुर बाजे।
रति-रणे मदन पराभव मानल
जय जय दुन्दुभि बाजे।

तिल एक जघन सघन रव करइत
होएब सैनक भंगे
विद्यापति पति ओ रस गाहक
जञुनि मीलु जनि गंगे।

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-122)

शब्दार्थ : *विगलित—छिड़िआएल, चिकुर—केश, स्रवन—कान, सैनक—शयनक, किंकिनि—करघनी/डंड़कस, दुन्दुभि—नगाड़ा, धाता—ब्रह्मा, तिल एक—एक क्षण, जघन—जाँघ, सैनक—संभोगक, भंग—विघटन।*

पाठ-अर्थ : मुँह पर केश छिड़िआएल जेना चान केँ मेघ घेरि नेने हो। कान मे मणिमय कुंडल झुलैत आ घाम सँ चानन बहि क' गाल पर चल आएल। हे सुन्दरी! तोहर मुँहक दर्शन मंगलदाता छी। हरि-हर केँ बाते की, मदन पर्यंत पराजित भेला।
डंड़कस किनि-किनि बजैए, कंगना कन कन आ नुपुर रुनझुन जेना कामदेवक विजयक दुन्दुभि बाजि रहल हो।
जाँघ परहक ओ एक तिल आइ सुत' नइँ देत...
विद्यापति कहै छथि जे एहन जँ पति रस-ग्राहक हो तँ नागरि सँ जेना गंगा मे जमुना के मिलनाइ।

[94]

थिर नहि जउबन थिर नहि देह।
थिर नहि रहए बालमु सञो नेह॥

थिर जनु जानह ई संसार।
एक पए थिर रह पर उपकार॥

सुन-सुन सुन्दरि कएलह मान।
की परसंसब तोहर गेञान॥

कउलति कए हरि आनल गेह।
मूर भाँगल सन कएल सिनेह॥

आरति आनल विघटित रंग।
सुतरिक राब सरिस भेल संग॥

विमुखि चलल हरि बुझि बेबहार।
आबे कि गाओत कवि कण्ठहार॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-138)

शब्दार्थ : *थिर—स्थिर, बालमु—स्वामी/पति, कउलति—निहोरा, आरति—आर्त, सुतरिक—सपटा, राब—गुड़, सरिस—समान*

पाठ-अर्थ : ई यौवन, ई देह, ई प्रिय प्रेम आ ई संसार, किछुओ स्थायी नइँ। बस एक टा पर-उपकार टा स्थायी अछि। सुनह सुन्नरि! अनेरे जे मान क' बैसलह तकर केओ प्रशंसा नइँ करतह। तोहर ज्ञानक की गुण गाउ जे रंग मे भंग केलह एहने सन जेना राब (गुड़) जमि गेला पर तर मे ओछाओल सपटा हटा देल जाइ छै।
प्रियतम बुझि गेला आ विमुख भ' गेला। आब की गाओत कवि—फुरा नइँ रहल छनि।

[95]

जञो दिठिअओलह ई मति तोरि
पुनु हेरसि हो खापरि मोरि।

भेल ककर धए हठे परनाह
बाघ मिता न जीव पए आह।

अइसना सुमुखि करिअ कके रोस
मञे कि बोलिबो सखि तोरे दोस।

एहन अबथे तुअ ई बेवहार
पर पीड़ाए जीवन थिक छार।

भल कए पूछलए घुरि संसार
तर सुते कढ़ि काट कुम्भार।

गुन जञो रह गुननिधि सञो संग
विद्यापति कह ई बड़ रंग।

(ने.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-102)

शब्दार्थ : *दिठिअओलह—देखलह/आँखि लगौलह, हेरसि—देखितहि, मोरि—हमर, कके—किए, अबथे—अवस्था, कुम्भार—कुम्हार।*

पाठ-अर्थ : तोहर ई कोन मोन जे तों हमरा देखलह, फेर रुष्ट होइ छह। एना हठ केला पर नाह केना भेटतह। बाघ मित्र हो तैयो जान पर खतरा रहबे करतह। अनेरे के तामस करै छह, (तैयो) तोहर दोष की कहब। मुदा...
एहन अवस्था मे ई व्यवहार करैत छह से जानि लैह जे दोसर केँ पीड़ा देनाइ माने जीवन केँ नष्ट केनाइ भेल। संसार भरि मे घुमि क' देखि लहक। कुम्हार अपन गढ़ल वस्तु तँ सूत सँ ओरिआ क' कटैए। गुन जँ गुणनिधिक संग रहत तँ विद्यापति कहै छथि जे अद्‌भुत रंग लागत।

[96]

आइ तँ सुनिअ उमा भलि परिपाटी।
उमगल फिर मुस झोरी मोरि काटी॥

झोरी रे काटिअ मुस जटा काटि जीबे।
सिरम बैसल सुरसरि जल पीबे॥

बेटा रे कातिक एक पोसल मजूरे।
सेहो देखि डरें मोर फनिपति झूरे॥

तोहें जे पोसल गउरी सिंह बड़ मोटा।
सेहो देखि डरए मोर बसहा गोटा॥

भनइ विद्यापति बाँसक सिंगा।
तपोवन नाचथि धतिंगा धतिंगा॥

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-646)

शब्दार्थ : *भलि—बेस, परिपाटी—परंपरा/व्यवहार, उमगल—बमकल, सिरम—माथ लग, फनिपति—साँप, गोटा—दुब्बर-पातर, बाँसक सिंगा—बाँस सँ बनल एक बाजा, धतिंगा—'नाच' के ताल।*

पाठ-अर्थ : सुनू उमा! ई बेस परंपरा शुरू करै गेलौंहे। ओ मूस सौंसे बमकल फिरैए, हमर झोरी काटि देलक, जटा काटि देलक आ सीरम मे बैसि क' गंगा जल पीबैए...ओ कातिक एक टा मयूर पोसि लेलनि से देखि क' हमर नाग डेराइए...अहाँ अपने जे एक टा मोटका सिंह पोसने छी तकरा डरे बेचारा हमर बसहा थर-थर कँपैए...
विद्यापति कहै छथि जे (एतबा कहलो पर उमा हमर बात पर कोनो कान-बात नै देलनि तँ) बेचारे बाँसक सिंगा उठओलनि आ सिंगा बजा क' नाच' लगला...

[97]

रुसि चललि गउरी तेजि महेस।
कर धए कार्तिक कोर गनेस॥

तोहें गउरी जनु नइहर जाह।
त्रिसुल बाघम्बर बेचि बरु खाह॥

त्रिसुल बाघम्बर रह वर पाए।
हम दुख काटब नइहर जाए॥

देखि अएलहुँ गउरी नइहर तोर।
सबहुक पहिरन बाकल डोर॥

जनि उकटिअ सिव नइहर मोर।
नांगट सञो भल बाकल डोर॥

मोर वचने तेजि चललिहि रुसि।
नइहर पोसल हमर घर मूसि॥

भनइ विद्यापति सुनिअ महेस।
नीलकण्ठ भए हरिअ कलेस॥

(लो.कं./मो.भा., वि.शि., प.सं.-70)

पाठ-अर्थ : कार्तिक के हाथ पकड़लनि, गनेस केँ कोरा मे लेलनि आ गौरी रुसि क' महेस केँ छोड़ि नैहर विदा भ' गेलीह।
हे गौरी! तों नैहर नइँ जाह। बरु त्रिशूल-बघंबर बेचि क' खर्ची चलाबह। त्रिशूल-बंघबर तँ वरदानी छी, एकरा राखू। हम आब अपन दुख नैहरे जा क' काटब।
देखलियह तोरो नैहर गौरी। सब के सब विष्ठी जकाँ पहिरने।
हे! हमर नैहर केँ नइँ उकटू। नांगट सँ नीक जे किछुओ तँ पहिरने अछि।
हमरा बात पर रुसि गेलह। नैहर विदा भेलह। मुदा ओही नइहरक पोसल मूस हमरा घर मे पैसा देलह।
विद्यापति कहै छथि जे हे महेस। एना उतराचौरी केने काज नइँ चलत। चुपचाप सब टा सुनह। (विष सन बोल के) कंठ मे अंटका लैह तँ सब टा क्लेशक हरण भ' जेतह।

[98]

नित मोञे जाञो भिखि आनञो माँगि।
कतहुँ न गेल मोरा संगहु लागि॥

झोरिआहु लेबाके नहि उसास।
ई पोसि होएत परतरक आस॥

एहे गउरि मोर कञोन दोस।
बइसल जेम गन कञोन भरोस॥

थूल पेट भूमि लड़ए न पार।
सिव देखए न पारह हमर बार॥

खेदि देहे बरु निकलि जाउ।
मोरे नामे भिखि माँगि खाउ॥

देखह लोक हे अइसनि जोए।
मनुस उपरि कइसे माउगि होए॥

अपना पुतके न जानए काज।
निठुर भइए कत मोहु सञो बाज॥

भनइ विद्यापति देव कि देओ।
करिअ करम जइस हँस न केओ॥

गनपति देखले होअ सब काज।
राए सिवसिंह एकछत्र राज॥

(न.गु./गो.झा, वि.प., मै.अ., प.सं.-641)

शब्दार्थ : *परतर—भविष्य, जेम—भोजन केनाइ, उसास—सहायता, थूल—स्थूल/भारी, लड़ए—बुलए, बार—बालक, खेदि—भगाउ, जोए—स्त्री, गन—गनेस, देओ—देत।*

पाठ-अर्थ : हम तँ सब दिन भीख माँगि क' अनै छी। ई (गनेस) कतहु हमरा संगे नइँ जाइए। संग जाइत तँ झोरी ल'क' उसास करैत। एकरा पोसि क' तँ भविष्यक कोनो टा आस नइँ। हे गउरा! एहि मे हमर कोन दोष? गनेस जे बैसल ठाम दुनू साँझ भोजन करै छथि से ककरा भरोसे।

(हे शिव) पेट नमहर छै तें ओ भूमि पर बुलि नइँ पबैए। तोरा तँ हमर बालक फूटली आँखियो नइँ सोहाइ छह। भगा दैह जे हम सब चलि जाइ आ तों हमरे नामे भीख माँगि क' खाह।

देखह हे लोक सब! केहन मुँहजोरि अछि ई। पुरुष पर अपन जुति चलबैए। एकर अपन पूत अकाजक छै आ ई उनटे हमरे बात-कथा कहैए।

विद्यापति कहै छथि, देव की देता। अपने एहन कर्म करू जाहि सँ ना-हँसी नइँ होए।

[99]

चान्द सार लए मुख घटना करू
लोचन चकित चकोरे।
अमिञे धोए आँचरे जनि पोछल
दह दिस भेल उजोरे॥

कामिनि कञोने गढ़ली।
रूप सरूप मोहि कहइते असम्भव
लोचन लागि रहली॥

गुरु नितम्ब भरें चलए न पारए
माँझ खीनि सनि-माई।
भाँगि जाइति मनसिजे धरि राखलि
त्रिबलि लता अरुझाई॥

भनइ विद्यापति अद्‌भुत कौतुक
ई सब वचन सरूपे।
रूपनराञेन ई रस जानथि
सिवसिंह मिथिला भूपे॥

(त.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-5)

शब्दार्थ : *सार—सत्व, घटना—रचना, चकित—चंउकल, अमिञ—अमृत, जनि—स्त्री, दह—दस, उजोर—प्रकाश, कञोने—केना, गुरु—भारी/पृथुल, नितम्ब—डांडक नीचाँक भाग, माँझ—बीच मे, खिनि—लघु, भाँगि जाइति—टुटि जाएत, मनसिजें—कामदेव*

पाठ-अर्थ : चानक सत्व ल'क' मुँहक आ चकित चकोर सँ आँखिक रचना भेल। मुँह धो क' जे धनि आँचर सँ पोछलनि तँ दसोदिशा जगमगा गेल।
कामिनी केँ के गढ़लक ? रूपक सत्य केँ कहनाइ असंभव अछि। बस आँखि मे बसि गेलीह।
भारी नितम्ब दुआरे चलल नइँ होइ छनि। लगै छै जेना बीच्चे सँ टुटि जेतै। परंतु जिवलि-लता दुनू भाग केँ ओझरा क' रखने अछि।
विद्यापति एहि कौतुक सँ अचंभित होइत कहै छथि जे ई सब टा बात सत्य छी।

[100]

ससन परसें खसु अम्बर रे
देखल धनि देह।
नव जलधर तर चमकए रे
जनि बीजुरि रेह॥

आज देखल धनि जाइते रे
मोहि उपजल रंग।
कनकलता जनि सञ्चर रे
महि निरअवलम्ब॥

ता पुनु अपुरुब देखल रे
कुचजुग अरविन्द।
बिगसित नहि किछु कारन रे
सोझाँ मुखचन्द॥

विद्यापति कवि गाओल रे
बूझए रसमन्त।
देवसिंह नृपनागर रे
हाँसिनि देवि कन्त॥

(बं.प./वि.प., बि.रा.परि., प.सं.-15)

शब्दार्थ : *ससन—श्वास वायु, परसें—स्पर्श सँ, अम्बर—वस्त्र, जलधर—मेघ, रेह—रेखा, रंग—आनन्द, कनकलता—सोनाक लत्ती, सञ्चर—सचल, महि—पृथ्वी, निरअवलम्ब—निराधार, अरविन्द—कमल, विगसित—विकसित*

पाठ-अर्थ : (धनि अपना बाटे जा रहल छथि तँ) श्वास-वायुक कारणें शरीर सँ वस्त्र ससरि गेलनि...धनिक शरीर केँ देखल तँ लागल जेना नवका मेघ मे बिजुरि संचरण क' रहल होइ। फेर हमरा मोन मे आएल जे कनकलता बिना अवलंब केँ धरती पर भ्रमण क' रहल छथि।
तखन फेर तँ अपरूप देखल...वक्ष पर जोड़ा कमल कोढ़ी केँ, जकर अविकसित हेबाक कारण छै सोझाँ मे चान सनक मुँह केँ रहनाइ। विद्यापति गबै छथि आ रसज्ञ रस बुझताह।

●●●

स्रोत-संदर्भ

1. विद्यापति पदावली (भाग-1, 2, 3) संपा. कुमार गंगानंद सिंह, डॉ. सुधाकर झा शास्त्री, लक्ष्मीपति सिंह, पं. बलदेव मिश्र, पं. जटाशंकर झा, डॉ. अमरेश पाठक, डॉ. अरविंदनारायण सिन्हा, डॉ. जे.एन. घोष, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना
2. विद्यापति-दर्शन : डॉ. बजरंग वर्मा : बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पटना
3. विद्यापति : डॉ. शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. विद्यापति-पदावली : संपा. पं. गोविन्द झा, मैथिली अकादमी, पटना
5. विद्यापति की पदावली : संकलन-रामवृक्ष बेनीपुरी, भावार्थ-दिनेश्वर लाल आनन्द, संपा.-रामलोचन शरण, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय
6. विद्यापति पदावली : डॉ. देशराज सिंह भाटी, विनोद प्रकाशन मंदिर, आगरा
7. रागतरंगिणी : लोचन, मैथिली अकादमी, पटना
8. विद्यापति-गीत-संचयन : संपा. रामदेव झा, मोहन भारद्वाज, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
9. भाषा गीत संग्रह : संपा. रमानाथ झा, पटना विश्वविद्यालय, पटना
10. विद्यापति शिवगीत : संपा. मोहन भारद्वाज, मित्रम प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, पटना

संकेताक्षर

वि.प.	—	विद्यापति पदावली
बि.रा.परि.	—	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद
प.सं.	—	पद संख्या
ने.प.	—	नेपाल पदावली
त.प.	—	तरौनी पदावली
रा.पु.प.	—	रामभद्रपुर पदावली
बं.प.	—	बंगाल पदावली
रा.त.	—	राग तरंगिणी
ग्रि.	—	ग्रियर्सन
लो.कं.	—	लोक कंठ में प्रचलित
न.गु.	—	नगेन्द्रनाथ गुप्त संपादित विद्यापति पदावली
भा.	—	भाषा गीत संग्रह
की.	—	कीर्त्तिपताका
बे., वि.प.	—	बेनीपुरी, विद्यापति की पदावली
गो.झा, वि.प., मै.अ.	—	गोविन्द झा, विद्यापति-पदावली, मैथिली अकादमी
मो.भा., वि.शि.	—	मोहन भारद्वाज, विद्यापति शिवगीत

समस्त आधुनिक भारतीय भाषाक दुर्लभ कविक नाम अछि विद्यापति। चौदहम शताब्दीक मिथिला नरेश शिवसिंहक परम मित्र आ राजकवि विद्यापति दरबार मे रहितहुँ अपन कविता मे दरबारी संस्कृति केँ अतिक्रमित क' जाइत छथि। हुनक सम्पूर्ण पदावली मे नामोल्लेखक अतिरिक्त दरबारक ऐश्वर्यशाली वैभव आ दरबारी संस्कृतिक विलोपन चमत्कृत करबाक विषय थिक। असीम भक्ति, उद्दाम शृंगार आ अंतरंग प्रेमक विरलतम कवि छथि विद्यापति।

मध्यकालीन काव्य परिसर मे 'अलौकिक' भक्तिक बीच सघन सामाजिक सरोकार आ मानवीय आकांक्षाक काव्यात्मक अभिव्यक्ति विद्यापति केँ अपन समकालीन भक्त कवि सँ सर्वथा अलग आ विशिष्ट बनबैत अछि। 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' कहि दुनिया भरिक मातृभाषाक गौरव-गान आ संस्कृतक स्थान पर लोकभाषा मे रचना क' कविता केँ जनसुलभ बना प्रगतिशील दृष्टिक अगुआ कवि होयबाक श्रेय सेहो विद्यापतिक खाता मे सुरक्षित अछि।

भक्ति कविता मे स्त्री-निन्दाक रूढ़ि पालनक विपरीत स्त्री-सौंदर्य, स्त्री-आकांक्षा आ स्त्री पीड़ाक अभिव्यक्ति विद्यापति केँ स्त्री-संवेदनाक महाकवि बनबैत अछि। बेमेल विवाह, मिथिलाक विपन्नता, पलायनक पीर, स्त्री-वेदना एवं अशिक्षित महिला-पुरुषक लेल यौन-शिक्षाक आरम्भिक ज्ञान सदृश्य आधुनिक विचार सभक काव्यात्मक लड़ी थिक पदावली; विशेष रूप सँ नचारी आ महेशवाणी। 'हे सखि मानुष जनम अनूप' कहि मनुष्य-जीवनक (लौकिक) प्रतिष्ठा, 'परबस जनु हो हमर पियार' कहि प्रेमक परवशताक प्रतिवाद, 'जुवती भए जनमए जनु कोइ' कहि स्त्री पीड़ाक, 'किरिसि करिअ मन लाए' कहि कृषि-कर्मक महत्त्वक रेखांकन आदि विद्यापतिक आधुनिक चित्तक परिचायक अछि।

रंगकर्मी आ विद्यापति काव्यक मर्मज्ञ अध्येता कुणाल संपादित प्रस्तुत संग्रह मे मुख्य रूप सँ सामाजिक चेतना-सम्पन्न पद सभ केँ वर्तमानक आँखि सँ देखैत परोसबाक चेष्टा कयल गेल अछि जे कविक समकालीनता सिद्ध करैछ। ई संग्रह विद्यापति केँ भक्त आ शृंगारी कविक बान्हल चौखटि धरि सीमित नहि राखि, दिन-दुनियाक चिंता आ चिंतन सँ समृद्ध एक टा सरोकार सम्पन्न कवि सँ साक्षात्कार करबैत अछि।

—कमलानंद झा

मूल्य : ₹ 250/-

ISBN 978-81-962063-0-7

9 788196 206307

अंतिका प्रकाशन प्रा. लि.
सी-56/ यूजीएफ-4
शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-II
ग़ाज़ियाबाद-201005 (उ.प्र.)